आख़िरी हमला

पुस्तक अंश : आशिस नंदी, शिखा त्रिवेदी, शैल मायाराम और अच्युत याग्निक
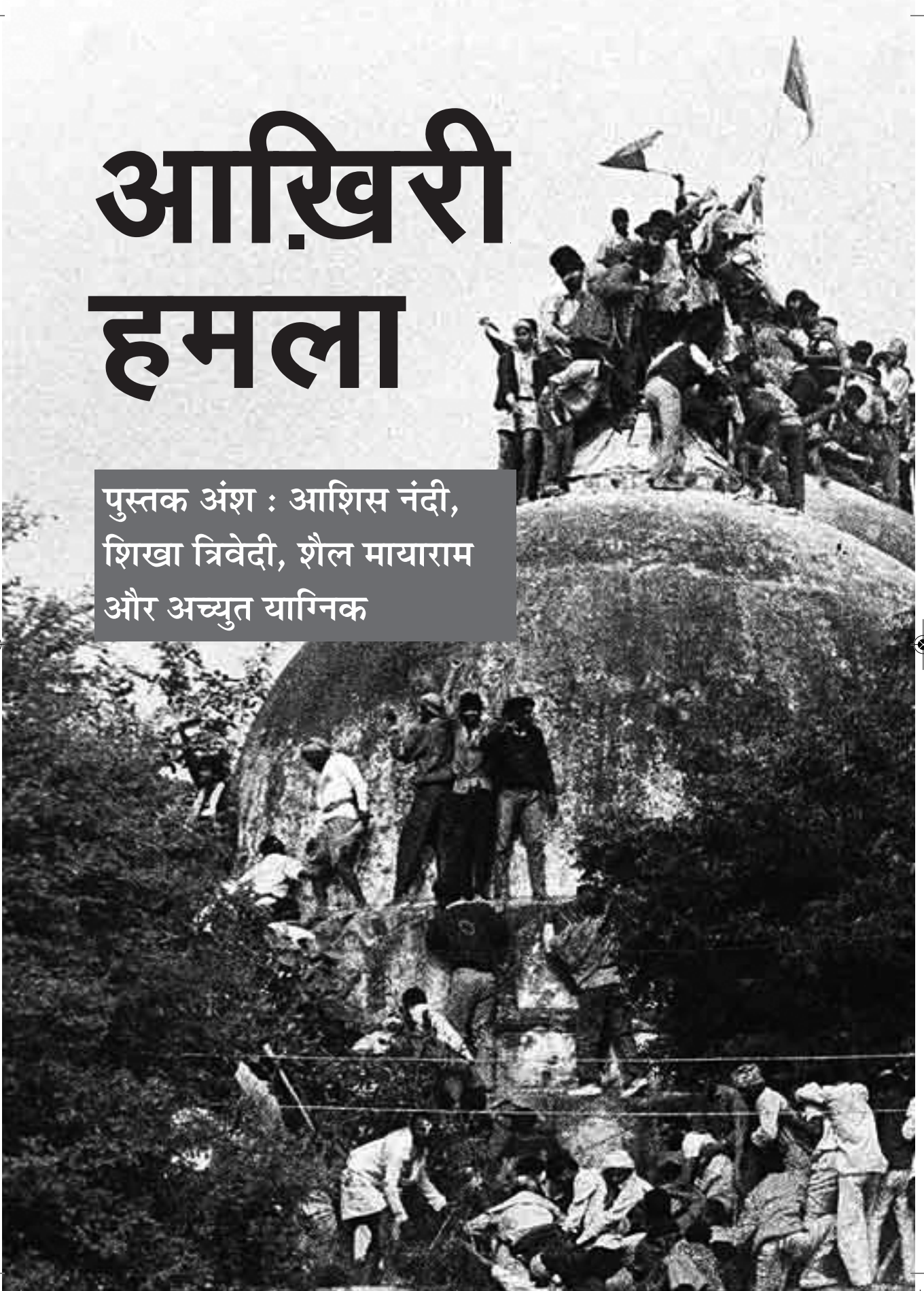
छह दिसम्बर, 1992 को अयोध्या में बाबरी मस्जिद ढहाए जाने के पच्चीस साल पूरे हो चुके हैं। अटल बिहारी वाजपेयी ने इस घटना को 'राष्ट्रीय भावनाओं का प्रकटीकरण' की संज्ञा दी थी, और लालकृष्ण आडवाणी ने इसे 'दु:खद' क़रार दिया था। लेकिन, इसकी जाँच करने वाले एक सदस्यीय लिब्राहन कमीशन की रपट बताती है कि बाबरी-ध्वंस एक सोची-समझी साज़िश का परिणाम था जिसे बनाने और कार्यान्वित करने में भारतीय जनता पार्टी के वरिष्ठ नेताओं, संघ परिवार और भाजपा के नेतृत्व वाली उत्तर प्रदेश सरकार के मुख्यमंत्री की सक्रिय हिस्सेदारी थी। विख्यात समाज मनोविद् आशिस नंदी, पत्रकार शिखा त्रिवेदी, इतिहासकार शैल मायाराम और सामाजिक कार्यकर्ता अच्युत याग्निक की 2005 में वाणी द्वारा प्रकाशित बहुचर्चित पुस्तक *राष्ट्रवाद का अयोध्या कांड : रामजन्मभूमि आंदोलन और आत्मभय की राजनीति (क्रियेटिंग अ नैशनलिटी : रामजन्मभूमि मूवमेंट ऐंड फ़ियर ऑफ़ द सेल्फ़)* के अंतिम अध्याय 'आख़िरी हमला' में रिपोर्ताज़ शैली में बाबरी मस्जिद पर हुए कारसेवकों के विध्वंसकारी हमले का सिलसिलेवार चित्रण किया गया है। लेखकों ने यह विवरण अपनी अयोध्या यात्राओं के दौरान उस घटना के स्थानीय चश्मदीदों, उससे पैदा हुई साम्प्रदायिकता के शिकारों, कारसेवकों का अंदरूनी हाल लेने के लिए उनके बीच घुलमिल गये हिम्मती संवाददाताओं, अयोध्या प्रकरण पर लगातार नज़दीकी निगाह रखने वाले पत्रकारों के अवलोकनों और स्वतंत्र नागरिक संगठनों द्वारा जारी की गयी जाँच रपटों के आधार पर तैयार किया था।

इस देश की अन्य समस्याओं की तरह रामजन्मभूमि विवाद न तो अपने-आप ख़त्म हुआ और न ही उसे पूरी तरह से हल किया जा सका। 1992 के छह महीने ही बीत पाए थे कि यह मसला फिर से खदबदाने लगा। हल निकलने की सम्भावनाएँ एक संकट-चक्र की समाप्ति और दूसरे की शुरुआत जैसी लगने लगीं। इस बार मामला कुछ ज़्यादा ही संगीन था। न तो अयोध्या के मुसलमानों और उनके हिंदू पड़ोसियों के पारम्परिक सांस्कृतिक, सामाजिक और आर्थिक रिश्ते काम आने वाले थे, और न ही उस तीर्थ नगरी में तीन सौ साल से जारी जीवन-शैलियों का समागम उन्हें बचाने वाला था। अयोध्या के हिंदुओं और मुसलमानों का भविष्य उन बेहद ताक़तवर राजनीतिक-सामाजिक ताक़तों के शिकंजे में फँस चुका था जो पूरे दक्षिण एशिया पर हावी हो चुकी थीं।

अयोध्या में हुई पहली सांकेतिक कारसेवा के बाद डेढ़ साल से भी ज़्यादा का वक़्फ़ा गुज़र चुका था कि 5 जुलाई, 1992 को बाबरी मस्जिद के पूर्व में प्रस्तावित राममंदिर के 'एक हिस्से' का निर्माण शुरू कर दिया गया। इस कार्रवाई के पीछे देश के विभिन्न हिस्सों से आये हुए कारसेवक और काफ़ी संख्या में साधु-संत व पुजारी थे। सबसे पहले सिंह द्वार बनना शुरू हुआ जिसकी लम्बाई 138 फुट, चौड़ाई 116 फुट और नींव की गहराई 6 फुट रखी गयी थी। पर्यटकों के लिए सुविधाएँ बनाने के नाम पर यह जगह उत्तर प्रदेश की भाजपा सरकार ने अधिग्रहीत कर ली थी। पाठकों को याद होगा कि यह वही जगह थी जहाँ कुछ मंदिर इसलिए धराशायी किये गये थे ताकि राममंदिर के लिए जगह बनाई जा सके।

इस अचानक शुरू हुई गतिविधि का कारण समझना असम्भव नहीं था। उत्तर प्रदेश की भाजपा सरकार एक तरह की उलझन की शिकार थी। प्रदेश को तक़रीबन दंगा मुक्त राज्य बनाने (भाजपा के कार्यकाल में केवल वाराणसी में ही एकमात्र दंगा भड़का था) में कामयाबी मिलने के बावजूद भाजपा अपने-आप से सवाल पूछती नज़र आ रही थी कि आख़िर उसकी सरकार और राज्य पर हुकूमत कर चुकी अन्य सरकारों में फ़र्क़ क्या है? उसकी सरकार भी पुराने ढर्रे से मंथर गति से चल रही थी। भारतीय राजनीति का प्रचलित तर्क उस पर हावी हुआ जा रहा था। ग़लत हो या सही, ख़राब शासन और भ्रष्टाचार के आरोपों से घिरी हुई इस सरकार का नेतृत्व करने वाली पार्टी को लगा कि अपना समर्थन आधार क़ायम रखने और अगले चुनाव में फिर से सत्ता में आने के लिए उसे रोज़मर्रा की राजनीति से अलग हटकर कुछ दर्शनीय कारनामा करना होगा। घोषणा पत्र में राममंदिर बनाने का वायदा मौजूद था ही, ऊपर से विहिप और बजरंग दल दबाव भी डाल रहे थे। ऐसी परिस्थितियों में भाजपा की निगाह स्वाभाविक रूप से राममंदिर जैसे सुविधाजनक मुद्दे पर अटक गयी।

छह दिसम्बर को 7 बजे सुबह तक बाबरी मस्जिद के आसपास का पूरा इलाक़ा साधारण कारसेवकों से ख़ाली कर दिया गया। संघ के विश्वस्त लोगों की एक छोटी-छोटी टीमों ने उस पर नियंत्रण कर लिया। इनमें से एक टीम महाराष्ट्र के 15 स्वयंसेवकों की थीं। उसकी जिम्मेदारी कारसेवा व्यवस्थित तरीक़े से कराने की थी। इसके अलावा ये टीमें अपने बारे में कुछ बताने के लिए तैयार नहीं थी। ज़रूरी नहीं है कि ऐसा करने के लिए उन्हें हिदायत दी गयी हो। लेकिन, उनके इरादों की एक झलक महाराष्ट्र से आये किशोरवय के कारसेवकों के एक समूह से मिली। संघ के कुछ स्वयंसेवक और दो पुलिसवाले इन लड़कों को मैदान से बाहर निकाल रहे थे। इस पर उन कमसिन कारसेवकों ने बड़े यक़ीन के साथ कहा कि *जब हम इधर से फायनली जाएँगे न, तो इधर कुछ नहीं बचने का*। इस पर संघ के स्वयंसेवकों ने एक कहकहा लगाया जिसमें पुलिसवालों का सुर भी शामिल था।

हालाँकि उन दिनों के जनमानस की थाह लेने वाला कोई भरोसेमंद सुराग़ उपलब्ध नहीं है, पर लखनऊ और उसके आसपास के गाँवों में किया गया एक सर्वेक्षण ज़रूर मिलता है। यह सर्वेक्षण दिखाता है कि भाजपा सरकार कोई ख़ास अलोकप्रिय नहीं हुई थी, पर यदि केंद्र सरकार उस समय संघ परिवार से सख़्ती से निबटती तो उसे व्यापक जनसमर्थन मिलता (तालिका-1, 2 और 3 : इस सर्वेक्षण में ज़्यादातर सवाल शहरियों से पूछे गये थे, इसलिए इन तालिकाओं के आँकड़े उत्तर प्रदेश के शहर-ग्राम अंतराल के हिसाब से समायोजित किये गये हैं)।

इस बार कारसेवक कुछ सुनने के मूड में नहीं लग रहे थे। विहिप और बजरंग दल के स्थानीय नेताओं ने उन्हें चुन-चुन कर अयोध्या भेजा था। 28 नवम्बर, 1992 को इलाहाबाद हाई कोर्ट ने आदेश पारित किया कि रामजन्मभूमि पर होने वाली निर्माण की सभी तरह की गतिविधियाँ विवादित स्थल की सीमा पर ही रुक जानी चाहिए। लेकिन, उससे पहले ही बजरंग दल के अध्यक्ष विनय कटियार ने केंद्र सरकार को धमकी दे डाली थी कि अगर उसने कारसेवकों के ख़िलाफ़ ताक़त का इस्तेमाल किया तो अयोध्या की सड़कें उनकी लाशों से पट जाएँगी। इस धमकी से उन अफ़वाहों को बल मिला जिनके अनुसार कहा जा रहा था कि कारसेवकों के बीच से कुछ कट्टरपंथी तत्त्वों ने बलिदानी जत्थे बना लिए हैं और वे लोग प्लास्टिक बमों और अन्य विस्फोटकों से लैस हैं।

कारसेवकों के मूड से मिलती-जुलती लफ़्फ़ाज़ी उनके नेताओं द्वारा भी की जा रही थी। नेता कम साधु रामचंद्र परमहंस की भाषा देखने क़ाबिल थी, 'अगर हम मुलायम सिंह यादव के शासन में कारसेवा कर सकते हैं तो अब हमें कौन रोक सकता है?' स्वामी परमानंद ने दो क़दम आगे बढ़कर कहा, 'अब तो रामलला भी स्वर्ग से उतरकर हमसे कारसेवा रोकने के लिए कहें तो हम उनकी नहीं सुनने वाले।' अशोर सिंहल केंद्र सरकार को धमकी दे रहे थे कि अगर उसने दख़ल देने की कोई भी कोशिश की तो कारसेवा सीधे गर्भ गृह से ही शुरू की जाएगी यानी मस्जिद नष्ट कर दी जाएगी। जब सिंहल की नज़र मस्जिद के बुर्ज पर चढ़े हुए अयोध्या के हज़ारों बंदरों में से किसी एक पर पड़ी तो वे फ़ौरन बोल पड़े कि अब तो ख़ुद हनुमानजी ने आशीर्वाद दे दिया है। इससे अच्छा शुभ संकेत तो कोई हो ही नहीं सकता।

शुरू में कारसेवकों की संख्या कुछ सौ ही थी जो धीरे-धीरे बढ़ी, पर ख़ुफ़िया विभाग की रपटों के मुताबिक़ वह 8,000 से ज़्यादा कभी नहीं हुई। विहिप का दावा है कि अयोध्या में पूरे समय 50,000 से ज़्यादा कारसेवक हमेशा मौजूद थे। भाजपा के कई विधायक भी अपने सहयोगियों और समर्थकों के साथ कारसेवा करने वहाँ पहुँचे। इनमें हमीरपुर के विधायक बादशाह सिंह भी थे जो अपने साथ चालीस मुसलमानों को भी कारसेवा करने लाए थे।

मामला उस समय काफ़ी बिगड़ गया जब हाई कोर्ट के आदेश को धता बताते हुए निर्माण की गतिविधियाँ जारी रहीं। सिंघल ने बयान देकर कारसेवकों से अपील की कि वे सारे देश से अयोध्या की तरफ़ चल पड़ें ताकि नौबत आने पर अधिकारियों से टकराया जा सके। जब फ़ैज़ाबाद के ज़िलाधिकारी रवींद्रनाथ श्रीवास्तव और वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक डी.बी. राय मौक़े पर बिना किसी पुलिस दल के अदालती आदेश लागू करवाने गये तो उत्तेजित कारसेवकों ने *जय श्री राम* के नारे लगाते हुए उन्हें घेर लिया। उस समय वहाँ ओंकार भावे और परमहंस भी मौजूद थे। ज़िलाधिकारी ने जैसे ही संतों से अदालती आदेश के पालन की अपील की, वे गुस्से में आ गये और जब तक कलक्टर और एसएसपी ने उनके पैर छूकर माफ़ी नहीं माँग ली, वे शांत नहीं हुए।[1]

तालिका-1

छह दिसम्बर की पूर्व संध्या पर उत्तर प्रदेश में जनता की राय का एक अनुमान

प्रश्न	हाँ	नहीं	अन्य	योग
	59.0 **56.5**	36.5 **37.0**	4.5 **6.5**	100.0 **100.0**
अगर उत्तर प्रदेश सरकार ने कारसेवा होने दी, तो क्या उसे बर्ख़ास्त कर दिया जाना चाहिए?	48.5 **50.5**	41.0 **37.5**	10.5 **12.0**	100.0 **100.0**

स्रोत : एमआरएएस-बर्क सर्वे, *दि पायनियर*, 29 सितम्बर 1992

नोट : गहरे रंग वाले आँकड़े उत्तर प्रदेश में शहर-ग्राम अंतराल के अनुसार समायोजित हैं

[1] *जनसत्ता*, 18 जुलाई, 1992.

तालिका-2

छह दिसम्बर की पूर्व संध्या पर उत्तर प्रदेश में जनता की राय का एक अनुमान

प्रश्न	अच्छा या ख़राब	ठीक	बेकार	पता नहीं	योग
आपकी निगाह में उप्र	66	35.5	8.5	1	101
सरकार का प्रदर्शन	63	34.5	10.5	10.5	99.5

स्रोत और नोट : तालिका-1 की ही भाँति

तालिका-3

छह दिसम्बर की पूर्व संध्या पर उत्तर प्रदेश में जनता की राय का एक अनुमान

प्रश्न	कांग्रेस-इ	भाजपा	जद/सजपा	अन्य	नहीं पता/नहीं कह सकता
अगर अदालत के आदेश के बावजूद उत्तर प्रदेश सरकार ने कारसेवा होने दी जिसके कारण उसे बर्ख़ास्त करके चुनाव कराये गये तो आप किसे वोट देंगे?	41.5	26	7	1	34.5
	31.5	23.5	10.5	1	35.5

स्रोत और नोट : तालिका-2 की ही भाँति

आदेश पारित करने वाले हाई कोर्ट के जजों, जिनमें एक हिंदू और एक मुसलमान था, के पुतले जलाए गये। घोषित किया गया कि 20 जुलाई को न्यायपालिका विरोधी दिवस मनाया जाएगा। आदेश पारित होने के एक दिन बाद फ़ैज़ाबाद बार एसोसिएशन के वकील कारसेवा करने अयोध्या पहुँचे।

इस बार स्थानीय मुसलमान भी चुप नहीं बैठे। क़रीब सौ मुसलमानों ने विवादित स्थल तक विरोध में जुलूस निकाला और गिरफ़्तारी दी। मंदिर आंदोलन की शुरुआत के बाद पहली बार मुसलमान सड़क पर उतरे थे। इससे पहले वे सिर्फ़ अपना डर, हताशा और गुस्सा व्यक्त करते थे, पर इस बार वे टकराव की भाषा बोलते नज़र आये। इसी दौरान अयोध्या में बाबरी मस्जिद एक्शन कमेटी की बैठक हुई जिसमें नेताओं द्वारा घोषणा की गयी कि अगर दस दिन के भीतर विवादित स्थल पर निर्माण की गतिविधियाँ बंद न हुईं तो वे अपने बिरादरों की अगुवाई करते हुए कारसेवकों को शारीरिक रूप से रोकेंगे। लेकिन, इन बहादुराना ऐलानों के बाद भी स्थिति यह थी कि अदालत का आदेश सुनते ही अयोध्या के मुसलमान दूकानदारों ने प्रतिक्रिया के अंदेशे से अपने शटर गिरा दिये।[2]

लेकिन, देश के दूसरे हिस्सों के मुसलमान इतने मजबूर नहीं थे। कई जगहों पर वे सड़कों पर निकल आये, जिसकी संगठित प्रतिक्रिया होनी ही थी। महाराष्ट्र के मालेगाँव और केरल के तिरुवनंतपुरम में इस्लामिक सेवक संघ (आईएसएस) नामक एक उग्रवादी संगठन ने संघ की क़वायद में भाग ले रहे हिंदुओं पर हमला कर दिया। आईएसएस के नाम से ही ज़ाहिर था कि वह आरएसएस के तर्ज पर गठित किया गया है। दंगे दो दिन तक चलते रहे जिसमें छह लोगों की जानें गयीं। राज्य में दूसरी जगहों पर बाबरी मस्जिद की सुरक्षा की माँग करते हुए हज़ारों मुसलमानों ने प्रदर्शन किया।

ठीक उस समय जब यह लग रहा था कि अदालती आदेश का पालन कराने में नाकाम रहने के कारण राज्य सरकार की सम्भावित बर्ख़ास्तगी और केंद्र सरकार और कारसेवकों में हो सकने वाले

[2] *जनसत्ता,* 16 जुलाई, 1992.

टकराव से संकट अपने चरम पर पहुँच जाएगा, नवनिर्वाचित प्रधानमंत्री पी.वी. नरसिंह राव ने किसी तरह चार महीने की मोहलत हासिल कर ली। उन्होंने वायदा किया कि अगर उन्हें समय दिया जाए और कारसेवक विवादित स्थल से हटा लिए जाएँ तो वे मसला हल कर देंगे। सरकार और आंदोलन के बीच एक क़रार पर दस्तख़त हुए जिस पर साधु-संतों ने भी हस्ताक्षर किये। विहिप ने कारसेवकों को विवादित स्थल से हटाकर पास के अविवादित स्थल पर निर्माण गतिविधियाँ करने के लिए भेज दिया जहाँ लक्ष्मण के नाम पर एक मंदिर प्रस्तावित था। (उस समय तक विहिप विवादित स्थल के आसपास कई छोटे मंदिरों को धराशायी कर चुकी थी जिसमें एक मंदिर ऐसा भी था जिसमें शेषनाग की पूजा होती थी। चूँकि इस मंदिर का गिराना अशुभ समझा गया इसलिए कारसेवकों ने राम के भाई लक्ष्मण का मंदिर बनाने पर ज़ोर देना शुरू कर दिया था। लक्ष्मण को शेषनाग का अवतार समझा जाता है।)

सितम्बर की शुरुआत से नवम्बर के आख़िर तक हिंदू और मुसलमानों के प्रतिनिधिमण्डलों के बीच क़रीब 90 बैठकें हुईं। लेकिन, विहिप और एक्शन कमेटी के नेताओं को एक मेज पर लाने के अलावा सरकार कुछ हासिल नहीं कर पायी। (यह ज़रूर है कि प्रधानमंत्री निजी तौर पर संघ के सरकार्यवाह राजेंद्र सिंह से सूत्र जोड़े रहे। कहा जाता है कि राजेंद्र सिंह ने राव से एकाधिक बार आग्रह किया कि वे इलाहाबाद हाई कोर्ट पर अपना फ़ैसला देने का दबाव डालें ताकि उसके आधार पर मसले का कोई न कोई हल खोजा जा सके। शायद राजेंद्र सिंह मानते थे कि अदालती आदेश के बहाने संघ परिवार कारसेवकों को काबू में कर सकेगा। लगता था कि सिंह की अपील पर नरसिंह राव की तरफ़ से कोई जवाब नहीं आया) [3]।

विहिप लगातार कह रही थी कि वह आख़िरी तारीख़ आगे नहीं बढ़ाएगी। इसी बीच आग में घी डालने के लिए उन्होंने अपना एक और जनसम्पर्क कार्यक्रम शुरू कर दिया। यह था राम चरण पादुका पूजन। इसके तहत क़रीब 12,000 खड़ाऊँओं का फ़ैज़ाबाद के नंदी ग्राम में 22 सितम्बर को अभिषेक होना था। इनमें से बहुत-सी खड़ाऊँएँ तो स्थानीय मुसलमान कारीगरों द्वारा बनाई गयी थीं। मिथक यह है कि नंदी ग्राम में ही वनवास के समय भरत ने राम की खड़ाऊँ की पूजा की थी। अभिषेक के बाद इन खड़ाऊँओं को देश के विभिन्न हिस्सों में भेजा जाना था जहाँ स्थानीय मंदिरों में उनकी पूजा की जानी थी। विहिप का यह अभियान विशेष लोकप्रिय नहीं हुआ।

अभी सरकार से बातचीत चल ही रही थी कि विहिप ने 31 अक्टूबर को कारसेवा फिर शुरू करने की तारीख़ छह दिसम्बर घोषित कर दी। समझौते की बातचीत नाकाम होते समय ऐसा लग रहा था कि सरकार 2.77 एकड़ विवादित ज़मीन अधिग्रहीत करके उत्तर प्रदेश सरकार बर्ख़ास्त कर देगी ताकि हाई कोर्ट का वह आदेश लागू किया जा सके जिसके अनुसार वहाँ निर्माण की गतिविधियों पर रोक लगा दी गयी थी। लेकिन, 28 नवम्बर को उत्तर प्रदेश सरकार का चार सूत्रीय हलफ़नामा स्वीकार कर लिया जिसमें कारसेवा के प्रतीकात्मक होने का वायदा किया गया था। साथ ही कहा गया था कि निर्माण की कोई गतिविधि नहीं होगी, अदालत के आदेश का उल्लंघन नहीं होगा और विवादित स्थल की सुरक्षा सुनिश्चित की जाएगी। बाद की घटनाओं से साबित हुआ कि भाजपा ने यह दाँव इसलिए खेला था कि अयोध्या में कारसेवकों और पार्टी नेताओं के बेरोकटोक आने पर कोई बाधा न लग सके।

नवम्बर के अंत तक 20,000 कारसेवक अयोध्या पहुँच चुके थे। जैसे-जैसे छह दिसम्बर नज़दीक आता जा रहा था, उनकी संख्या बढ़ती जा रही थी। साफ़ होता जा रहा था कि शायद पहली बार इस

---

[3] चार दिसम्बर तक राजेंद्र सिंह का धीरज चुकने लगा था. कहा जाता है कि उन्होंने एक मध्यस्थ के सामने टिप्पणी की कि जिन लोगों ने *परिवार* के साथ गद्दारी की है उन्हें सबक़ ज़रूर सिखाया जाएगा. राजेंद्र सिंह के ये उद्‌गार अयोध्या में डेरा डाले हुए संघ नेताओं को जब पता चले तो उन्होंने इन्हें उसे अंतिम सहमति के रूप में लिया जिसका वे इंतज़ार कर रहे थे.

पूरे तमाशे को संघ ने सीधे अपने हाथ में ले लिया है। मंदिर आंदोलन के इतिहास में पहले ऐसा कभी नहीं हुआ था कि विहिप और बजरंग दल ने मिलकर इतनी बड़ी संख्या में लोग अयोध्या में जमा कर लिए हों। आख़िर तक अयोध्या में सारे देश से क़रीब दो लाख लोग जमा हो चुके थे। उत्तर-पूर्व से आये लोगों को छोड़कर इनमें से ज़्यादातर संघ के स्वयंसेवक थे। कारसेवकों की जमात में शामिल होना आसान नहीं था। संघ द्वारा बनाए गये कई तरह के नियंत्रणों और जाँच-पड़तालों से गुज़रना पड़ता था।[4] ऐसा नहीं था कि इतने सारे समर्थक स्वत:स्फूर्त ढंग से वहाँ जमा हो गये हों। यह तो अत्यंत संगठित और पूरी तरह नियोजित राजनीतिक कार्रवाई थी।

सबसे ज़्यादा कारसेवक महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश, गुजरात, कर्नाटक और उत्तर प्रदेश से थे। इन कारसेवकों की संरचना अयोध्या में पहले जमा हुए कारसेवकों की संरचना से अलग थी। इस बार महिलाएँ, दलित, आदिवासी और पिछड़ी जाति के कारसेवक बड़ी संख्या में आये थे। उनकी बहुत बड़ी संख्या देहाती इलाक़ों से थी।[5]

कारसेवक किस क़दर कटिबद्ध और प्रेरित थे, इसका अंदाज़ा संजय काव की गवाही से लगाया जा सकता है। विहिप के प्रोपगंडे की खुराक ग्रहण करते-करते उनमें से कई को यक़ीन हो चला था कि केवल वे ही सच्चे हिंदू हैं, बाक़ी सब गद्दार हैं।[6] कारसेवकों की आस्था छूत के रोग की तरह साधारण नागरिकों को भी आक्रांत कर रही थी। यहाँ तक कि अर्धसैनिक बल भी उससे प्रभावित हुए जा रहे थे। अपने मुसलमान विरोधी रवैये के लिए विख्यात पीएसी वालों से बात करते हुए काव ने महसूस किया कि क़ानून और व्यवस्था के रखवाले कारसेवकों के साथ 'सम्मान ही नहीं, बल्कि श्रद्धा की भावना से' पेश आ रहे हैं। एक पीएसीवाले ने कारसेवकों के एक झुण्ड से कहा, 'चिंता मत करो, हम पूरी तरह तुम्हारे साथ हैं।' कारसेवकों के इस झुण्ड में काव भी शामिल थे। इतना कहने के बाद पीएसी वालों ने कारसेवकों को नाश्ता करने के लिए छावनी आने का निमंत्रण भी दिया।

इसी बीच भाजपा ने लालकृष्ण आडवाणी और मुरली मनोहर जोशी को अयोध्या के लिए कारसेवकों की गोलबंदी करने के लिए अलग-अलग यात्राओं पर भेज दिया। नवम्बर के आख़िर में आडवाणी ने पार्टी सांसदों को सुझाव दिया कि वे अयोध्या से दूर रहें, पर 36 घंटे के भीतर ख़ुद उनका इरादा बदल गया। वे ख़ुद कारसेवा करने के लिए अयोध्या जाने के लिए तैयार हो गये ताकि पार्टी के समर्थकों को दिखा सकें कि वे मस्जिद की जगह मंदिर बनवाने के वायदे से पीछे नहीं हट रहे हैं।[7] अपने नये जोश के अधीन होकर आडवाणी ने आजमगढ़ की एक सभा में कह डाला कि

---

[4] संजय काव, 'ए कारसेवक फ़ॉर थ्री डेज़', *दि स्टेट्समेन,* 4 दिसम्बर, 1992, ; और 'फ़ेनेटिसिज़म इन यूनीफ़ॉर्म', उपरोक्त, 5 दिसम्बर, 1992; स्वतंत्र पत्रकार संजय काव को कारसेवकों की क़तारों में भर्ती होने के लिए काफ़ी हाथ-पैर मारने पड़े. उन्होंने अपनी रपटों में दिखाया है कि कारसेवकों की भर्ती पर संघ का नियंत्रण कितना कड़ा था. काव की गवाही साफ़ तौर पर दिखाती है कि 6 दिसम्बर की घटनाएँ केंद्रीकृत, पूरी तरह संगठित और निर्देशित थीं. सरकारी सुरक्षा एजेंसियों के साथ पूरी तरह तालमेल कर लिया गया था. पत्रकारों पर निगाह रखना और कारसेवकों की निगरानी भी इस नियोजन का अंग था.

[5] ख़ासतौर पर गुजरात के संदर्भ में अध्याय पाँच देखें. इसमें बताया गया कि अयोध्या जाने वाले कारसेवकों की सामाजिक पृष्ठभूमि बदलने के पीछे राजनीतिक प्रक्रिया की क्या भूमिका थी.

[6] उपरोक्त.

[7] अजय बोस, 'कॉट इन ए डिलेमा' *दि पायनियर,* 1 दिसम्बर, 1992; बोस की ख़बरों से यह भी पता लगता है कि सामान्य तौर पर संयमित रहने वाले आडवाणी अपने आपे में नहीं लग रहे थे. 'विश्वसनीय और सीधी बात' करने के बजाय वे 'तनावग्रस्त और चिड़चिड़े' हो गये थे. भाजपा का पूरा नेतृत्व ही इस तरह की दुविधा में फँसा लग रहा था.

पहले आडवाणी को छह दिसम्बर की सुबह अयोध्या पहुँचना था. उनके साथ वे पत्रकार भी वहाँ जाने वाले थे जो उनकी यात्रा में उनके साथ रहे थे. सवाल यह है कि आडवाणी ने कार्यक्रम क्यों बदला और वे एक दिन पहले शाम को क्यों पहुँचे? ज़ाहिर है कि वे उसी शाम और अगली सुबह कटियार के घर में होने वाली कमराबंद बैठक में हिस्सा लेना चाहते थे. इन बैठकों में शिव सेना के मोरेश्वर सावे, संघ के के.एस. सुदर्शन और एच.वी. शेषाद्रि, भाजपा के प्रमोद महाजन और कटियार और सिंघल ने भी हिस्सा लिया था. कुछ रपटों के अनुसार जब आडवाणी इस बैठक से निकले तो उनका चेहरा बहुत चिंतित लग रहा था. देखें, सिटीज़ंस ट्रिब्युनल ऑन अयोध्या, *रिपोर्ट ऑफ़ दि इनक्वारी* (सिटीज़ंस ट्रिब्युनल ऑन अयोध्या, नयी दिल्ली, 1993); कुछ रपटों का कहना था कि कुछ हमलावर तेवर के कारसेवकों ने कटियार के घर के बाहर जमा होकर आडवाणी के ख़िलाफ़ नारेबाज़ी भी की.

कारसेवा 'शारीरिक, ईंटों और बेलचों' से होगी। बाद में इस टिप्पणी का उन्हें खण्डन करना पड़ा।[8] लेकिन, विनय कटियार एकदम संकोचहीन होकर बोल रहे थे :

> प्रतीकात्मक कारसेवा जैसी कोई चीज़ नहीं होती ...यह देश अदालत के आदेशों से नहीं चलेगा ...इसे समाज चलाएगा ... न्यायपालिका को राममंदिर के ख़िलाफ़ आदेश पारित करने का कोई अधिकार नहीं है ... अगर कोई संघर्ष होता है तो हम उसके लिए तैयार हैं ... कुछ बिगाड़ने पर ही कुछ बनता है।[9]

लखनऊ में 5 दिसम्बर की सुबह हमारे एक साथी से बात करते हुए अटल बिहारी वाजपेयी अपनी पार्टी के अन्य नेताओं के मुक़ाबले कहीं ज़्यादा होशियार साबित हुए। जब उनसे पूछा गया कि क्या अयोध्या में जमा कारसेवकों से छह दिसम्बर को बाबरी मस्जिद सुरक्षित रहेगी, तो उनका जवाब था, 'आशा है और आशंका भी।'[10] छह दिसम्बर को बाबरी मस्जिद पर हमले के कुछ मिनट पहले से मौक़े पर ही हुई संक्षिप्त बातचीत में साध्वी ऋतम्भरा ने भी इसी तरह का दोहरा बयान दिया। उनसे पूछा गया था कि क्या छह दिसम्बर को इलाहाबाद हाई कोर्ट के आदेश का उल्लंघन होगा? ऋतम्भरा का जवाब था, 'कारसेवा कारसेवा की तरह होगी। उल्लंघन होगा या नहीं, यह आप बाद में देखेंगे।' इसके बाद साध्वी ने कहा, 'निर्माण शुरू होने से पहले किये जाने वाले सभी काम किये जाएँगे। कारसेवा हम केवल मंदिर में करेंगे।' उनसे फिर पूछा गया कि विहिप की अधिकारिक उद्घोषणा के मुक़ाबले कारसेवा से आपका क्या तात्पर्य है? उनका जवाब था कि 'देखिए, हम स्वयं को शांत कर सकते हैं, लेकिन हम इधर-उधर कुछ पानी छिड़क कर लाखों लोगों को शांत नहीं कर सकते। हर कोई इस बात को अच्छी तरह जानता है। इसलिए हम यह जगह केवल धुलाई और सफ़ाई करके छोड़ने नहीं जा रहे।' क्या आपका मतलब है कि मस्जिद ढहा दी जाएगी? ऋतम्भरा का उत्तर था, 'हम कहना यह चाहते हैं कि आज हम ढाँचा नहीं तोड़ना चाहते, पर वह बचेगा भी नहीं।'

हमारा एक साथी पाँच दिसम्बर की दोपहर बाद अयोध्या पहुँचा, ताकि परिवार के सबसे महत्त्वपूर्ण नेताओं को बोलते हुए सुना जा सके। रामकथा कुंज के विशाल प्रांगण में जमा हज़ारों कारसेवकों के सामने ये भाषण हो रहे थे। यह मैदान 2.77 एकड़ के विवादित प्लाट से लगा हुआ है। भाषणबाज़ी देर शाम तक चलती रही। एक के बाद दूसरा वक्ता श्रोताओं को यही भरोसा देता रहा कि वे पूरी तरह संतुष्ट होकर घर वापस जाएँगे। परमहंस ने कारसेवकों से कहा, 'जो आपके मन में है, वही हमारे मन में भी चल रहा है। यह मत सोचो कि जो काम तुम पूरा करने आये हो उसे पूरा नहीं कर पाओगे।'

■■■

इन्हीं भाषणों के बीच विहिप के मार्गदर्शक मण्डल ने घंटों तक विचार-विमर्श करने के बाद धीरज खोते जा रहे कारसेवकों तक संदेश पहुँचाया कि अगले दिन होने वाली कारसेवा का रूप क्या होगा? मण्डल के प्रमुख सदस्य आचार्य धर्मेंद्र और बजरंग दल के अध्यक्ष विनय कटियार ने घोषणा की कि दोपहर बाद 12.15 बजे संतगण चार स्थानों पर एक साथ प्रतीकात्मक कारसेवा की शुरुआत करेंगे।

यह प्रतीकात्मक कारसेवा क्या थी? इसके अनुसार सरयू से पानी लाकर हम चबूतरे की धुलाई और सफ़ाई होनी थी (क्योंकि एक संत के मुताबिक़ वहाँ आने वाले नेताओं ने उसे अपवित्र कर दिया

---

[8] अमित प्रकाश, 'आडवाणी डिनाइज़ मेकिंग 'शॉवल ऐंड ब्रिक्स' स्टेटमेंट', *दि पॉयनियर,* 9 दिसम्बर, 1992.

[9] कंचन गुप्ता, 'कारसेवा कांट बी सिंबोलिक, सेज़ कटियार', *दि पॉयनियर,* 1 दिसम्बर, 1992.

[10] छह दिसम्बर के बाद भाजपा की पहली प्रेस कॉन्फ्रेंस में जब वाजपेयी से पूछा गया कि वे लखनऊ में पाँच दिसम्बर को होने के बावजूद कारसेवा करने अयोध्या क्यों नहीं गये, तो वाजपेयी ने एक ऐसी बात कही जो बाद में लगा कि उनके मुँह से धोखे से निकल गयी होगी. उन्होंने कहा कि बाद में दिल्ली में भी तो कोई सँभालने वाला चाहिए था.

है)। इसके अलावा चबूतरे के पास शिलान्यास वाले गड्ढे को नदी की रेत से भरा जाएगा, फिर पूरे विवादित स्थल का पवित्र स्थल से छिड़काव होगा, शेषावतार मंदिर के आसपास की निचली ज़मीन को समतल किया जाएगा और एक अघोषित स्थान पर ईंटें चिनी जाएँगी। इस घोषणा से ऐसा लग रहा था कि विहिप ने 11 दिसम्बर तक प्रतीकात्मक कारसेवा चलाने का ही निर्णय लिया है। इसी दिन हाई कोर्ट को भूमि अधिग्रहण के मुक़दमें पर फ़ैसला सुनाना था।

लेकिन, दिन ख़त्म होते-होते वाजपेयी द्वारा व्यक्त शंकाएँ सही होते लगने लगीं। साफ़ होने लगा कि कारसेवा विवादित स्थल पर मंत्रोच्चारण करने तक ही सीमित नहीं रहेगी, जबकि मुख्यमंत्री कल्याण सिंह ने सुप्रीम कोर्ट में अपने हलफ़नामे में यह वायदा किया था। शाम होते ही उत्तेजित कारसेवक नृत्यगोपाल दास और परमहंस को घेरकर गालियाँ देने लगे कि वे प्रतीकात्मक कारसेवा के लिए राजी कैसे हो गये। विनय कटियार ने जब कारसेवकपुरम में पहुँचकर उन्हें शांत करने की कोशिश की तो बेहद उत्तेजित और कटिबद्ध कारसेवकों ने उन्हें भी झकझोर डाला। कारसेवकों ने बिना हिचक कहा कि वे बाबरी मस्जिद ध्वस्त करने के लिए ही अयोध्या आये हैं। इससे कम पर उन्हें तसल्ली नहीं होगी। ज़ाहिर था कि सावधानी से छाँटे गये विचारधारा की ख़ुराक पर पले कारसेवकों को अयोध्या भेजने की योजना कामयाब होती लग रही थी।

एक तरफ़ ऐसे कारसेवकों के बहुत बड़े हिस्से का दबाव था जिनकी रगों में महीनों से किया जा रहा प्रोपेगंडा बह रहा था, दूसरी तरफ़ उस समय तक परिवार के कुछ नेताओं के इरादे भी शक के दायरे में आ चुके थे। रामकथा कुंज और विवादित प्लाट के आसपास के इलाक़े में पत्रकारों के घुसने पर पाबंदी लगा दी गयी थी। सभी को यक़ीन था कि कुछ चुनिंदा कारसेवक वहाँ मस्जिद ढहाने का प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे हैं। अगले दिन *इण्डियन एक्सप्रेस* में पाँच दिसम्बर की एक तस्वीर छपी जिसमें रामकथा कुंज में कारसेवक एक बहुत बड़े शिलाखण्ड को रस्सियों से खींचने का अभ्यास करते हुए दिख रहे थे। उसी दिन लखनऊ की एक पत्रकार को प्रतिबंध स्थल पर कई घंटों तक रोक कर रखा गया, क्योंकि उसने वहाँ घुसने की जुर्रत की थी। उसे तभी छोड़ा गया जब उसने आँखों देखी ख़बर अपने अख़बार को न भेजने का भरोसा दिया।

आधी रात से ठीक पहले हमने मस्जिद के नज़दीक कटियार को एक चंपत राय नामक व्यक्ति से गहन बातचीत में मशगूल देखा। चंपत राय की न तो उम्र ज़्यादा थी और न ख्याति। अवध क्षेत्र में संघ की गतिविधियों के मुखिया होने के नाते वे अपने आप अयोध्या में अगले दिन होने वाली कारसेवा के इंचार्ज बन गये थे। कटियार और चंपत राय ने अस्थायी दरवाज़े और शिलान्यास स्थल (साल के शुरू में ध्वस्त किया जाने से पहले) वाले गड्ढ़े के बीच के इलाक़े का एकाधिक बार सर्वेक्षण किया। इसी अस्थायी दरवाज़े से मस्जिद की तरफ़ एकमात्र रास्ता खुलता था। ऐसा लगता था कि ये दोनों अगले दिन होने वाली कारसेवा की जगह तय कर रहे थे। ख़ास बात यह थी कि जिस इलाक़े की वे निशानदेही कर रहे थे, वह विवादित प्लाट में शामिल नहीं था। सुबह होते-होते वहाँ एक भगवा झण्डा भी दिखने लगा। यह बाद में ज़ाहिर हुआ कि यही वह जगह थी जहाँ से सैकड़ों कारसेवक जबरन भीतर घुसने में कामयाब हुए। पहले उन्होंने विवादित स्थल के आसपास लगी बंबू की बाड़ तोड़ी, और फिर मस्जिद पर हमला बोल दिया।

छह दिसम्बर को 7 बजे सुबह तक बाबरी मस्जिद के आसपास का पूरा इलाक़ा साधारण कारसेवकों से ख़ाली कर दिया गया। संघ के विश्वस्त लोगों की एक छोटी-छोटी टीमों ने उस पर नियंत्रण कर लिया। इनमें से एक टीम महाराष्ट्र के 15 स्वयंसेवकों की थी। उसकी ज़िम्मेदारी कारसेवा व्यवस्थित तरीक़े से कराने की थी। इसके अलावा ये टीमें अपने बारे में कुछ बताने के लिए तैयार नहीं थीं। ज़रूरी नहीं है कि ऐसा करने के लिए उन्हें हिदायत दी गयी हो। लेकिन, उनके इरादों की एक झलक महाराष्ट्र से आये किशोरवय के कारसेवकों के एक समूह से मिली। संघ के कुछ स्वयंसेवक

और दो पुलिसवाले इन लड़कों को मैदान से बाहर निकाल रहे थे। इस पर उन कमसिन कारसेवकों ने बड़े यक़ीन के साथ कहा कि *जब हम इधर से फायनली जाएँगे न, तो इधर कुछ नहीं बचने का*। इस पर संघ के स्वयंसेवकों ने एक कहकहा लगाया जिसमें पुलिसवालों का सुर भी शामिल था। इन कारसेवकों में एक बुजुर्ग व्यक्ति भी शामिल था, जिसे यह बात बुरी लगी। उसने उन लड़कों को नसीहत देने की कोशिश की कि वे अवज्ञा न करें और मार्गदर्शक मण्डल के निर्देश पर चलें। उसने कहा, 'मैं भी एक कारसेवक हूँ। पर मेरी मान्यता है कि हमारी कारसेवा गाँधीजी के सत्याग्रह की तरह अनुशासित होनी चाहिए।' चूँकि उस बुजुर्ग ने गाँधीजी का नाम आदर के साथ लिया था इसलिए उसे लड़कों के उपहास का सामना करना पड़ा, 'अरे तुम उसे गाँधीजी बोलते हो। हम तो उसे साला बुड्ढा हरामी बोलते हैं।' वह बूढ़ा आदमी उन्हें देखता रह गया।

दस बजे के आसपास तक विवादित स्थल के इर्द-गिर्द वाला इलाक़ा कारसेवकों से भर गया और उनका दबाव बेरिकेडों पर पड़ने लगा। वे हमलावर मूड में थे। संघ के स्वयंसेवक और कुछ मुट्ठी भर पुलिसवाले उन्हें रोके हुए थे। बीच-बीच में कुछ उन्मादित कारसेवक उनके घेरे को तोड़कर विवादित स्थल में घुस जाते थे और जब उन्हें वहाँ से धकिया कर निकाला जाता था तो आवेश में वे फूट-फूट कर रोने लगते थे।[11] तरह-तरह के साधू भी अपनी अहमियत जताते हुए बीच-बीच में निकलकर अपने विचार व्यक्त करते दिखाई दे रहे थे। इनमें परमहंस जैसे कुछ जानेमाने चेहरे भी थे। परमहंस ने एक पीला स्वेटर पहन रखा था। आमतौर पर बेतरतीब रहने वाली उनकी दाढ़ी और बाल कंघे से बाक़ायदा सँवारे हुए थे। इन्हीं में जूनागढ़ के साधु विश्वास बापू भी थे। उनका दावा था कि संन्यास लेने से पहले वे फ़ौज़ में छाताधारी सैनिक थे। उनकी बातें सनकी क़िस्म की थीं। वे कह रहे थे कि अगर सरकार लोगों को यक़ीन दिलाना चाहती है कि विवादित ढाँचा वास्तव में मंदिर न होकर मस्जिद है तो उसे यह कहना पड़ेगा कि गोडसे, बेअंत सिंह और शिवरासन (गाँधी, इंदिरा गाँधी और राजीव गाँधी के हत्यारे) हीरो थे, और गाँधीजी, इंदिरा और राजीव अपराधी थे। 'अगर वे इस पर तैयार हैं, तो हम भी तैयार हो जाएँगे।' धाराप्रवाह अंग्रेज़ी में यह निष्कर्ष निकालकर विश्वास बापू अपने विचार दूसरे कारसेवकों के सामने व्यक्त करने के लिए इधर-उधर हो गये।

कारसेवा का नियत समय नज़दीक आते ही आख़िरी क्षणों में कार्यक्रम कुछ बदला गया। पहले तय किया गया था कि सफ़ाई हेतु लाई जाने वाली रेत के लिए कारसेवकों को सरयू के तट से वहाँ तक मानव शृंखला बनाई जाएगी। पटना के भाजपा विधायक सुशील मोदी ने बताया कि अब यह काम अगले दिन सुबह साढ़े आठ बजे किया जाएगा। हमने उनसे पूछा, 'रेत लाने का फ़ायदा क्या होगा, जब उनकी ज़रूरत तो आज के कार्यक्रम के लिए है।'

11 बजे पूर्वाह्न के बाद संघ परिवार के शीर्ष नेताओं का विवादित स्थल पर आगमन शुरू हो गया। इनमें आडवाणी, जोशी, सिंघल, शेषाद्रि, सुदर्शन, कटियार, भारती और अवैद्यनाथ शामिल थे। वे उस जगह के नज़दीक भी नहीं फटके जहाँ एक घंटे के अंदर उन्हें कारसेवा करनी थी। सुरक्षाकर्मियों और कारसेवकों के छोटे-छोटे झुण्डों से घिरे हुए ये नेता यूँ ही इधर-उधर टहलने के बाद जल्दी ही वहाँ से खिसक लिए। पौने बारह बजे तक सारे नेता जा चुके थे। आख़िरी बार वहाँ सिंघल को देखा

---

[11] सात दिसम्बर के बात अस्पतालों में भर्ती किये गये कई कारसेवकों के दिमाग़ी खलल के बारे में भी एक अख़बार ने ख़बर छापी थी. विश्वजीत बनर्जी, 'सेवक्स फाउण्ड टु बी मेंटली इल', *दि पॉयनियर,* 24 दिसम्बर, 1992; कारसेवकों का इलाज कर रहे दिमाग़ के डॉक्टर के अनुसार उन्हें कई क़िस्म की दिक़्क़तें थी जिनमें श्रवण संबंधी भ्रम, अनिद्रा रोग, सम्भ्रांति (पेरानोइया) और आक्रामकता की समस्या ने उन्हें ज़्यादा परेशान कर रखा था. डॉक्टर के अनुसार सम्भवत: ग़रीबी, बेरोज़गारी और निरक्षरता का भी इन बीमारियों में योगदान था. ठीक इलाज़ न मिलने के कारण वे धर्म के फेर में ज़्यादा फँस गये थे. इन मरीजों के पास थैले भर-भर कर ऐसी चिट्ठियाँ बरामद हुईं जिनमें अंट-शंट बातें लिखी हुई थीं. ज़्यादातर पत्र राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री और उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री को सम्बोधित थे.

गया जो कुछ कारसेवकों को मस्जिद के आसपास लगी बाड़ से दूर धकेलने की कोशिश कर रहे थे।[12]

ठीक उस समय जब सिंघल मस्जिद के पास दिखाई दिये, पीएसी के लोगों ने अचानक वह जगह ख़ाली करनी शुरू कर दी। पीएसी का यह दल मस्जिद के भीतर तैनात था। इसका कारण समझ में नहीं आ रहा था, और न ही कंट्रोल रूप की छत पर चाय पी रहे अफ़सरों ने उन्हें रोका। पीएसी के जवान इस तरह टहलते हुए वहाँ से निकल गये जैसे कि उन्हें वहाँ से हटने का आदेश दिया गया हो। इसी समय दो कारसेवक पीछे से मस्जिद की चारदीवीरी पर चढ़ते हुए दिखे और आनन-फ़ानन में नज़रों से ओझल हो गये।[13]

परिवार के नेताओं के जाते ही पौने बारह बजे अचानक क़रीब बीस युवक तारों की बाड़ से घिरे मैदान में पहुँच गये। लगता था कि जैसे वे अस्थायी दरवाजे पर पुलिस के घेरे को तोड़कर अंदर घुस आये। कुछ कारसेवकों को भगाने में जुटे संघ के स्वयंसेवकों का हाथ बँटाने के लिए आये थे। ये

---

[12] कम से कम एक ख़बर तो ऐसी छपी ही थी जिसके अनुसार आडवाणी ने एक बार कारसेवा रोकने की आधी-अधूरी कोशिश ज़रूर की थी, पर जल्दी ही उन्होंने हार मान ली. कुछ ब्योरों के अनुसार सिंघल ने उन पगलाये हुए कारसेवकों को रोकने का प्रयास किया था जो आडवाणी के कपड़े खींचने पर आमादा थे. *दि पॉयनियर,* 10 दिसम्बर, 1992.

[13] इन घटनाओं को वीडियो न्यूज़ मैगज़ीन *न्यूज़ट्रैक* के जनवरी 1993 के अंक में दिखाया गया है.

लोग सिर पर कारसेवकों वाली वह भगवा पट्टी नहीं बाँधे हुए थे, जिस पर जय श्री राम लिखा रहता था। उनके सिरों पर नीबू वाले पीले रंग की पट्टियाँ बँधी हुई थीं। यह चमकदार रंग दूर से देखा जा सकता था। याद नहीं पड़ रहा था कि ऐसे बँधने पहले कभी कारसेवकों ने पहने हों।

पीली पट्टियों वाला यह समूह दरवाज़े की तरफ़ बढ़ा जहाँ पुलिस तेज़ी से बढ़ती हुई भीड़ को नियंत्रित करने की कोशिश कर रही थी। पुलिस की संख्या बहुत कम थी, और भीड़ बहुत ज़्यादा। इसे एक संकेत भी माना जा सकता था, क्योंकि जैसे ही बैरियर पर दबाव डाल रहे कारसेवकों की नज़र इन पीली पट्टी वालों पर पड़ी, वैसे ही माइक पर सार्वजनिक घोषणा होने लगी कि इन युवकों को वहाँ से हट जाना चाहिए। सुबह से वहाँ तैनात संघ के स्वयंसेवकों के साथ पीली पट्टी वालों के वहाँ से हटते ही कारसेवकों की भीड़ बैरियर तोड़कर मस्जिद की तरफ़ झपटी। वह हथौड़ों, लोहे की छड़ों, कुदालियों, सब्बलों, बाँसों और बेलचों से लैस थी। ठीक इसी समय कारसेवकों के झुण्ड बगल और पीछे से मस्जिद की बाहरी दीवार के ऊपर दिखाई पड़े। सुरक्षाकर्मी भी भाग कर अपने बचने की जगह तलाशने लगे। फ़ैज़ाबाद के वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक डी.बी. राय उन्हें वापस जाने का आदेश देते देखे जा सकते थे, पर उनकी किसी ने नहीं सुनी। अपने अफ़सर का आदेश न मान कर ये सुरक्षाकर्मी किनारे खड़े हुए तमाशा देखते रहे।[14]

कुछ कारसेवकों ने ख़ाली हाथों से ही मस्जिद को तोड़ना शुरू कर दिया। उसी समय मस्जिद के सामने बने टॉवर पर खड़ा संघ का एक व्यक्ति बार-बार सीटी बजाते हुए झण्डी लहरा रहा था। ऐसा लग रहा था कि जैसे वह किसी कार्यदल या एथलेटिक टीम को निर्देशित कर रहा हो। साथ की इमारतों की छतों पर कुछ औरतें जमा हो गयीं। उन्होंने कारसेवकों पर गुलाल फेंकना शुरू कर दिया। वे करतल ध्वनि करते हुए गा रही थीं। उनमें से कुछ टेलीफ़ोन के तार उखाड़ती हुई भी दिखीं।

क्या नेतागण पहले से जानते थे कि यह सब होने वाला है? इस सवाल का कोई आख़िरी जवाब उपलब्ध नहीं है। सम्भवतः कुछ नेता जानते थे, और कुछ नहीं जानते थे। चंदन मित्रा जैसे पत्रकारों द्वारा दिये गये विवरण से उसके उत्तर का एक अंदाज़ा लगाया जा सकता है।[15] इस विवरण में मस्जिद पर हमले के उन निर्णायक क्षणों के दौरान संघ परिवार के नेताओं के व्यवहार का चित्रात्मक वर्णन किया गया है। कंट्रोल रूप में उमा भारती और ऋतम्भरा जैसी राजनीतिक साध्वियाँ ही-ही कर रही थीं। मुरली मनोहर जोशी उमड़ती हुई भीड़ देखकर आवेश में आ गये थे। सिंघल को यक़ीन लग रहा था कि कारसेवा तयशुदा तरीक़े से ही होगी इसलिए वे उस भीड़ को हिदायतें देने में लगे थे जिसे प्रस्तावित मंदिर के स्थल को धोने-पोंछने की कोई चिंता नहीं थी। इन सब बातों के अलावा चंदन मित्रा के वर्णन में वह निर्णायक क्षण भी दर्ज है जब मस्जिद के गुम्बदों पर दो कारसेवकों को चढ़े देखकर भीड़ दीवानी हो गयी थी, और बड़े नेता 'तनावग्रस्त', 'खिन्न', और 'बेइंतिहा उदास' चेहरे लिए हुए बैठे थे। मित्रा के अनुसार उनके चेहरों पर मुर्दनी छा गयी थी। उन्होंने राजेंद्र सिंह (संघ की बागडोर उन दिनों दरअसल उन्हीं के हाथ में थी) को यह कहते हुए भी दिखाया है कि 'अब सरकार तो गयी।' इस विवरण में यह भी शामिल है कि नेताओं ने भीड़ को शांत करने के प्रयास में देर भी की, और उनकी कोशिश दयनीय भी थी। उधर आचार्य धर्मेंद्र जैसे लोग भी थे जो भीड़ का ध्यान आकृष्ट करने के लिए भजन गा रहे थे।[16] संघ परिवार के ये बड़े नेता जल्दी ही सँभल गये, पर आडवाणी के चेहरे पर 'चिंता' के भाव बने रहे, जैसे कि वे कहीं दूर देख रहे हों। शायद उनकी निगाह इस घटना के दूरगामी परिणामों पर थी।[17]

---

[14] 6 दिसम्बर की घटनाओं के बाद राय को मुअत्तिल कर दिया गया. बाद में राय ने सार्वजनिक रूप से इच्छा व्यक्त की कि वे भाजपा के टिकट से विधानसभा का चुनाव लड़ना चाहते हैं.

[15] चंदन मित्रा, 'कंट्रोल रूम देट हैड नो कंट्रोल', *दि हिंदुस्तान टाइम्स,* 8 दिसम्बर, 1992.

[16] उपरोक्त.

[17] उपरोक्त.

मस्जिद पर हमले के बाद साढ़े बारह बजे के क़रीब थोड़ी दूर पर मानस भवन के ठीक नीचे एक छोटे से तालाब सरीखे ईंटों और मिट्टी के गड्ढे में पंप के ज़रिये पानी भरा जाने लगा। इसी गड्ढे में सीमेंट मिलाकर मस्जिद के मलबे पर एक प्लेटफ़ॉर्म और मंदिर की दीवार बनाई जानी थी। पास की सभी गलियों में विहिप की एंबुलेंस गाड़ियाँ तैयार खड़ी हुई थीं, ताकि घायल कारसेवकों को फ़ौरन फ़ैज़ाबाद के सदर अस्पताल ले जाया जा सके। अस्पताल में उत्तर प्रदेश की भाजपा सरकार के पूर्व स्वास्थ्य मंत्री हरिश्चंद्र श्रीवास्तव कमान सँभाले हुए थे।[18]

तालिका-4
धार्मिक स्थलों और मक़बरों में की गयी तोड़-फोड़ का विभिन्न एजेंसियों द्वारा लगाया गया अनुमान

एजेंसी	मस्जिद	मजार	ईदगाह	मदरसा	मंदिर
ज़िला प्रशासन	11	9	0	2	0
ज़िला पुलिस	14	5	3	0	1
रिलीफ़ कौंसिल	23	11	0	0	0

स्रोत: कमला प्रसाद, दिनेश मोहन, कमल ए. मित्रा चिनॉय, कीर्ति सिंह, सागरी छाबड़ा, एस.सी. शुक्ला, *रिपोर्ट ऑफ़ दि इन्क्वारी कमीशन सबमिटिड टु सिटीजंस ट्रिब्युनल ऑन अयोध्या* (नयी दिल्ली : सिटीजंस ट्रिब्युनल ऑन अयोध्या, 1993),पृष्ठ 154.

■■■

इधर कारसेवक मस्जिद गिरा रहे थे, उधर इस घटनाक्रम की रिपोर्टिंग करने आये हुए पत्रकारों और फोटोग्राफ़रों पर नियोजित हमला किया जा रहा था। हमले के लिए पत्रकारों की शिनाख़्त करना कठिन नहीं था, क्योंकि एक दिन पहले ही विहिप ने उन्हें गुलाबी रंग के पहचान पत्र दिये थे जिनके ज़रिये उन्हें आसानी से पहचाना जा सकता था। कारसेवकों ने ज़्यादातर फ़ोटोग्राफ़रों के कैमरे पटक कर तोड़ डाले। पत्रकारों की पिटाई की गयी जिससे कुछ तो गम्भीर रूप से घायल हो गये। उनकी नोटबुकें फाड़ डाली गयीं और टेप रिकॉर्डर तोड़ डाले गये। एक कम उम्र की महिला पत्रकार को तो जान से मारने की कोशिश भी की गयी।[19]

कारसेवकों के एक दल ने अयोध्या में घुसने के सभी रास्तों को रोक दिया ताकि केंद्रीय सुरक्षा बल न आ सकें। दूसरे दल ने शहर में मुसलमानों के घरों में लूटमार और आगजनी शुरू कर दी। वे

---

[18] मंदिर आंदोलन ने उसके भागीदारों में अपने लिए किस स्तर की दीवानगी पैदा कर दी थी, इसका अंदाज़ा पुलिस की रपटों से लगाया जा सकता है जिनके मुताबिक़ उस दिन 896 कारसेवक घायल हुए थे. सिटीजंस ट्रिब्युनल ऑन अयोध्या, *रिपोर्ट ऑफ़ दि इन्क्वारी* (सिटीज़ंस ट्रिब्युनल ऑन अयोध्या, नयी दिल्ली, 1993), पृष्ठ 155; हालाँकि घटनाक्रम के हमारे वर्णन में पूर्व-योजना और साज़िश के पहलुओं पर ज़ोर दिया गया है, पर कुछ युवक कारसेवक विचारधारात्मक और नैतिक आवेग के शिकार भी थे. इनके अलावा कुछ पकी उम्र के कारसेवकों पर धार्मिकता के प्रभाव को भी कम करके नहीं आँका जा सकता. कहना न होगा कि पूर्व योजना बहुत सटीक नहीं थी और साज़िश के आयाम भी बहुत व्यापक नहीं थे, वरना कई कारसेवक घायल होने से बच सकते थे। कुछ युवक कारसेवक तो इसलिए घायल हो गये कि उन्होंने क्रोध के आवेग में मस्जिद को ख़ाली हाथों ही तोड़ने की कोशिश की. नेताओं पर इस आवेग का असर नहीं दिख रहा था, पर अनुयायियों पर उसका प्रभाव स्पष्ट था.

[19] उदाहरण के लिए देखें, सरोज नागी और वृंदा गोपीनाथ, 'मीडिया अटेक्ड टु स्टॉप डिमोलिशन फोटोज़', *दि पॉयनियर,* 14 दिसम्बर, 1992; 'प्रेसीडेंट हियर्स मीडियाज़ होरिफिक टेल्स', *दि पॉयनियर,* 10 दिसम्बर, 1992; कारसेवकों ने पाँच दिसम्बर को भी अयोध्या में एक जर्मन टेलीविज़न दल की ठुकाई लगाई थी.

मस्जिदों और ईदगाहों को तबाह करने में लग गये।

बहुत सवेरे से ही लाउडस्पीकरों से लगातार जय श्री राम की धीमी आवाज़ निकल रही थी। अचानक यह आवाज़ तेज़ हो गयी और उसकी भाषा भी बेहद आक्रामक हो उठी :

जय श्री राम, बोलो जय श्री राम,
जिन्ना बोलो जय श्री राम,
गाँधी बोलो जय श्री राम,
मुल्ला बोलो जय श्री राम ...

शुरू में माइक पर परेशानी भरी आवाज़ों में कारसेवकों से अनुशासन रखने की अपीलें भी हुईं। चूँकि पाँच सौ साल पुरानी मस्जिद धीरे-धीरे ढह रही थी, इसलिए कारसेवकों की सुरक्षा को लेकर चिंता भी व्यक्त की गयी। लेकिन, थोड़ी देर बाद माइक से कारसेवकों को केवल प्रोत्साहन और हिदायतें ही दी जाने लगीं। राम कथा कुंज में विहिप के मार्गदर्शक मण्डल के संत जमा होने लगे जहाँ सिंघल ने गर्व से घोषित किया कि हिंदुओं के विद्रोह की शुरुआत का क्षण आ पहुँचा है। विजय राजे सिंधिया ने कहा कि अब उन्हें मरते वक़्त तनिक भी अफ़सोस नहीं होगा क्योंकि उनका सपना सच हो गया है। केदारनाथ साहनी ने एक छोटे से भाषण में मुसलमानों को चेतावनी दे डाली :

> जो लोग वंदे मातरम् तक नहीं बोलना चाहते, जो लोग कश्मीर पर पाकिस्तान का झण्डा देखना चाहते हैं, उन्हें उनकी सही जगह दिखाने का सिलसिला शुरू हो गया है।

इस तमाशे में उमा भारती, ऋतम्भरा और धमेंद्र की भूमिका सबसे ज़ोरदार रही। भारती कई बार माइक पर आयीं। उन्होंने भीड़ को दो नारे दिये : *राम नाम सत्य है, बाबरी मस्जिद ध्वस्त है* और *एक धक्का और दो, बाबरी मस्जिद तोड़ दो।* ये दोनों नारे *जयश्रीराम* के नारों से साथ कई घंटों तक वहाँ गूँजते रहे। उमा भारती ने श्रोताओं के सामने मेरठ की शिव कुमारी प्रच्छन्नय को भी यह कहकर पेश किया कि 'वे उस ढाँचे के गुम्बद पर चढ़ने वाली पहली महिला हैं।' भारती द्वारा 2 नवम्बर 1990 को मस्जिद पर हमला बोलते समय पुलिस की गोली से मारे गये कारसेवकों शरद और रामकुमार कोठारी के माता-पिताओं को भीड़ के सामने पेश किया गया। भारती ने अपने श्रोताओं से कहा, 'उनकी माताओं की आँखों में आँसू थे, जब उन्हें पहली बार यह लगा कि उनके बेटों का बलिदान व्यर्थ नहीं गया और मुलायम और वी.पी. सिंह जैसे नरपिशाचों द्वारा की गयी उनकी हत्याओं का बदला ले लिया गया।'

इसके बाद ऋतम्भरा की बारी थी। उन्होंने कारसेवकों से अपील की कि वे इस शुभ और पवित्र काम में पूरी तरह से लगे रहें, क्योंकि प्रशासन भी चुपचाप रहकर उन्हें पूरा समर्थन दे रहा है। साध्वी ने हिदायत दी कि कारसेवक अपनी जगह तभी छोड़ें जब घायल हो जाएँ या फिर उनकी तबीयत ख़राब हो जाए। ऋतम्भरा ने कई भाषण दिये और उनके बाद उन्होंने पारम्परिक दुर्गा आरती का एक विहिप संस्करण गाना शुरू कर दिया जिसके साथ श्रोताओं ने भी जोश में आकर सुर मिलाया :

मिलकर बोलो जय माता दी
माँ तेरे बेटे, तुझे बुलाते
तू नीचे आ जा,
हम शीश कटा दें, तुझे चढ़ा दें
तू खप्पर ला दे, हम खून बहा दें
तू विनती मेरी, पूरी कर दे
तुझसे माँगूँ, मन्नत मेरी पूरी कर दे
मुझको चाहिए,
अयोध्या चाहिए, मथुरा चाहिए, काशी चाहिए

तू पूरी कर दे, जय माता दी।

शाम पौने छह बजे बाबरी मस्जिद का आख़िरी गुम्बद ढहा। उधर अयोध्या में दूर से ही धुआँ उठते हुए देखा जा सकता था। यह समझकर कि कारसेवक शहर में मुसलमानों के घरों पर हमले कर रहे हैं, ऋतम्भरा ने माइक सँभाला और यह कहना शुरू कर दिया कि 'मुसलमान अपने घर जलाना बंद करें।' धर्मेंद्र ने भी उनका साथ दिया और माइक पर गरजे कि कुछ अपराधी अपनी ही झोंपड़ियों को जलाकर माल कमाना चाहते हैं और कारसेवकों को बदनाम करने की कोशिश की जा रही है। बाद में धर्मेंद्र ने स्वर बदला और पत्रकारों के सामने दावा किया कि केवल इसी तरह से तो अयोध्या हिंदुओं का वेटिकन बन सकता था।

अयोध्या का 'पहला' दंगा

अयोध्या में पहले भी दो दंगे हो चुके थे जिनकी यादें बहुत पुरानी पड़ चुकी थीं। अतीत का सिंहावलोकन करते हुए अयोध्यावासी उन यादों के आईने में दंगों को ऐसे विचलनकारी व्यवहार के रूप में देख सकते थे जो भावनाओं के क्षणिक ज्वार के कारण किसी भी समुदाय को अपनी गिरफ़्त में ले सकता था। संघ परिवार सात साल से वहाँ एक आंदोलन चला रहा था, पर अयोध्या का समुदाय दो फाँकों में बँटने के लिए तैयार नहीं हुआ था। उसी अयोध्या के लोगों के लिए अब निर्णय का क्षण आ पहुँचा था।

छह दिसम्बर की रात और अगले दिन दोपहर के कुछ बाद तक कारसेवकों की हमलावर भीड़ ने अयोध्या में आगजनी और हत्या का दौर चालू रखा। 13 लोग मारे गये जिनमें बच्चे भी शामिल थे। शहर के लगभग सभी मुसलमानों ने छह दिसम्बर के एक दिन पहले ही सुरक्षित स्थानों पर शरण ले ली थी। कुछ मस्जिद के ध्वस्त होने की ख़बर पाकर भाग गये थे। मारे गये मुसलमान वे थे, जो समय रहते निकल पाने में चूक गये थे।

लगता था कि कारसेवक विहिप के इस दावे को ग़लत साबित करने पर तुले थे कि सर्वाधिक सहिष्णु धर्म होने के नाते हिंदू किसी दूसरे धर्म के पूजास्थलों को नष्ट नहीं करते। उन्होंने पूरे अयोध्या पर कहर ढाते हुए पूजा-स्थलों को जम कर तबाह किया। तालिका-4 में तीन एजेंसियों द्वारा लगाए गये इस तबाही के अनुमान दिये गये हैं।

कल्याण सिंह की सरकार के इस्तीफ़े और राज्यपाल शासन लगने के बारह घंटे के बाद तक कारसेवक मंदिरों की नगरी की सड़कों पर *जयश्रीराम* के नारे लगाते हुए घूमते रहे। उन्होंने बिना किसी प्रतिरोध का सामना किये मुसलमानों के घरों को दिनदहाड़े लूटा और आग लगाई। इस तरह यह अयोध्या का पहला 'बाक़ायदा' हिंदू-मुसलमान दंगा था जो बड़े पैमाने का साबित हुआ और जिसमें कुल मिलाकर 134 घर नष्ट किये गये।

घरों की तबाही का तरीक़ा सभी जगहों पर एक ही था। पहले कारसेवक क़ीमती चीज़ें और नक़दी लूटते थे। लूट-खसोट करने वाले कारसेवकों में ज़्यादातर पश्चिमी और दक्षिण भारत से आये थे। उन्हें लगा कि जेवर और नक़दी घर ले जाने में उन्हें आसानी होगी। फिर वे घर की सभी चीज़ों को चूर-चूर करते थे। चूँकि फर्नीचर, मोटरसाइकिलों, किताबों और कपड़ों को डंडों और हाथों से तोड़ा-फोड़ा नहीं जा सकता था, इसलिए उनके ढेर बनाकर उनमें आग लगा दी जाती थी। कुछ जगहों पर ऐसा भी हुआ कि जो चीज़ें वे साथ नहीं ले जा पाए उन्हें उनके पसंदीदा स्थानीय हिंदुओं में बाँट दिया गया। कुछ घरों को इसलिए आग नहीं लगायी गयी कि वे हिंदू घरों के बहुत ज़्यादा नज़दीक थे। बाक़ी सभी को व्यवस्थित रूप से जला दिया गया। जो भी मस्जिद मिली, उसे बोनस के तौर पर तोड़ डाला गया। दिन भर में दो को छोड़कर अयोध्या की सभी मस्जिदों और ईदगाहों को या तो नष्ट कर दिया गया या तोड़-फोड़ दिया गया।

इस नियोजित विनाश में कारसेवकों को उत्तर प्रदेश पुलिस, पीएसी और पहली बार कुछ स्थानीय हिंदुओं की तरफ़ से उपयोगी मदद मिली। स्थानीय हिंदुओं ने मुसलमानों की सम्पत्ति की निशानदेही की, तो पुलिस ने लूट में भाग लिया या फिर लूटमार की तरफ़ से आँखें बंद रखीं। मसलन, सात दिसम्बर की सुबह विवादित स्थल के पीछे रामकोट इलाक़े में पुलिस का भारी बंदोबस्त होने के बावजूद कारसेवकों ने लाला टेलर्स की दूकान में आग लगा दी जिसका मालिक कोई मुसलमान था। वहाँ तैनात पीएसी के जवानों ने इस आगजनी को रोकने के बजाय कारसेवकों से कहा कि वे दूकान के भीतर से कुछ फर्नीचर बाहर फेंक दें ताकि सड़क के बीच में उसकी लकड़ी का अलाव बनाकर ठण्ड में हाथ तापे जा सकें।

■■■

दस दिन बाद भी अयोध्या के मुहल्लों पर हिंदू राष्ट्रवाद की विजय यात्रा के घाव देखे जा सकते थे।[20] तबाही के निशान वैसे के वैसे ही थे, क्योंकि 24 घंटे के कर्फ़्यू के कारण मुसलमान वापस नहीं लौट सकते थे। उस वक़्त अयोध्या में मुट्ठी भर मुसलमान ही बचे थे। वे या तो अपने पड़ोसियों द्वारा बचा लिए गये थे, या फिर उन्होंने कारसेवकों से किसी प्रकार बच निकलने में कामयाबी हासिल कर ली थी।

पचास साल के बीचू एक ऐसे ही मुसलमान थे। उनका घर एक सुंदर-सी बग़ीची के किनारे राजघाट नाम की सड़क पर स्थित मीरापुर बुलंदी नामक बस्ती में था। 7 दिसम्बर की सुबह 11 बजे क़रीब सौ लोगों ने उनके घर पर हमला किया। आधे घंटे के भीतर मुहल्ले के सात अन्य मुसलमान घर भी बरबाद कर दिये गये। किसी की जान नहीं गयी क्योंकि ज़्यादातर मुसलमान पहले ही जा चुके थे। बीचू की साइकिल की दूकान थी। उन्हें उनके दो हिंदू पड़ोसियों ने बचा लिया। सरजू यादव और सुभाष ने बीचू के सिर पर कारसेवकों वाली भगवा पट्टी बाँध दी ताकि आततायी उन्हें मुसलमान न समझें। सरजू का कहना था, 'बहुत मुश्किल थी, क्योंकि हमला करने आये लोग हिंदी नहीं जानते थे। वे तेलुगू बोल रहे थे। जो थोड़ी बहुत हिंदी मैं जानता हूँ उसी से मैंने उन्हें यक़ीन दिलाया।' सुभाष के अनुसार उनकी बस्ती का कोई भी व्यक्ति हमले में शामिल नहीं था। लेकिन, उन्हें यह भी यक़ीन था कि कारसेवकों को मुसलमानों के घरों की पहले से जानकारी थी। उस समय पुलिस कहाँ थी? इस सवाल के जवाब में दोनों तक़रीबन एक साथ बोले, 'हमने केवल एक व्यक्ति वर्दी में देखा और वह कारसेवकों का नेतृत्व कर रहा था।'

ठीक जिस समय मीरापुर बुलंदी को तहस-नहस किया जा रहा था, कौशल्या घाट पर बनी पड़ोस की बस्ती मछवाना को घेरा जा चुका था। दुखी अब्दुल सत्तार ने अपने बरबाद घर की तरफ़ इशारा करके तल्खी से कहा, 'मैं बेहद ग़रीब आदमी हूँ, इसलिए मेरे पास तो था ही बहुत कम। अब जो था, वह भी चला गया।' सत्तार ने उस समय तक पुलिस में रपट नहीं लिखाई थी। उसे स्थानीय मुसलमान नेताओं का इंतज़ार था जिनके साथ वह थाने जाता। उसने कहा, 'पुलिस हम पर तैयारशुदा बयानों पर दस्तख़त करने के लिए दबाव डाल रही है। मैं पढ़ा-लिखा नहीं हूँ। पता नहीं उसमें क्या लिखा हो।'

मछवाना के सात-आठ मुसलमान घर और पड़ोस के शिकवाना के इतने ही मुसलमान घर जली हुई सुखालों जैसे लग रहे थे। सत्तार का घर जब उजाड़ा जा रहा था, तो वह फूलों की एक झाड़ी में छिपा हुआ कारसेवकों की कार्रवाई देख रहा था। उसने क़सम खाकर कहा कि हमलावरों में उसके अपने मुहल्ले के हिंदू और कुछ पड़ोस के लोग भी थे। ये लोग बाहर वालों को उत्साहित कर रहे थे। शिकवाना के वासी सत्तार की इस बात से सहमत थे। उनका कहना था कि कारसेवकों को तीन बार

---

[20] पाठक जानते ही होंगे कि यह विजय यात्रा अयोध्या के अलावा भी कई जगहों पर हिंसा के निशान छोड़ती चली गयी थी. इसके एक नमूने के लिए देखें : '15 कश्मीरी स्टूडेंट्स थ्रोन ऑफ़ रनिंग ट्रेन', द *टाइम्स ऑफ़ इण्डिया,* 13 दिसम्बर, 1992.

उनके मुहल्ले में लाया गया, ताकि वहाँ रहने वाले स्थानीय ज़मींदार नवाब ताहिर हुसैन साहिब का मकान लूटा जा सके। तीसरी बार वे कामयाब हुए और घर के 75 वर्षीय मालिक ताहिर साहिब समेत हर चीज़ को राख में बदल दिया। तीन सौ साल से अयोध्या में बसे हुए उस कुलीन मुसलमान के बूढ़े शरीर को घर के सामने के दरवाज़े पर ही जला डाला गया। केवल कुछ हड्डियाँ ही बची रह गयीं।

उन जले हुए खँडहरों को देखने से लगता था कि वह इमारत बुलंद रही होगी। हमने देखा कि वहाँ एक सत्तर साल की कमज़ोर-सी महिला पुरानी साड़ी पहने खड़ी थी। आँसू बहाते हुए और हाथ जोड़े हुए हुसैन साहिब की बीवी आलिया बेगम सामने खड़े पुलिस वालों से डर-डर कर कह रही थी कि उसके पति की हत्या के गवाह के तौर पर उसकी गवाही दर्ज की जाए। पुलिस इसके लिए तैयार नहीं थी, क्योंकि जब कारसेवकों ने हमला किया तो वे घर में नहीं थीं। वैसे भी पुलिसवालों के लिए वह बूढ़ी औरत बेकार थी। वे पुलिस से बहस करने की कोशिश कर रही थीं, 'ठीक है कि मैंने कुछ नहीं देखा, पर मैं सुन तो सकती थी कि वे चिल्ला रहे थे कि मारो-काटो, लूटो, फूँक दो, फूँक दो। मैं घर के पिछवाड़े झाड़ियों में छिपी थी। मैंने हुसैन साहिब को कारसेवकों से उन्हें छोड़ देने के लिए मिन्नतें करते हुए सुना— मुझे मत मारो, मुझे मत मारो। उनकी चीख भी सुनी।'

पुलिसवालों पर कोई असर नहीं हुआ। वे जाँच के नाम पर दूसरे गवाहों की घेरा-घारी करने लगे। उन्हें तो ताहिर हुसैन की मौत का यक़ीन भी नहीं हो रहा था, 'मोहल्ले के लोग कहते हैं कि हड्डियाँ उन्हीं की हैं। लेकिन, सबूत क्या है? किसी ने उन्हें मारे जाते हुए नहीं देखा। हो सकता है कि वे भाग गये हों।' पुलिस के जाने के बाद आलिया बेगम ने विलाप करते हुए कहा, 'यह झूठ है कि मैं किसी की भी क़सम खा सकती हूँ, कुरान की हो या रामायण की।' पर आलिया बेगम की बात किसी ने नहीं सुनी। वे अकेली अपने घर के उजाड़ में खड़ी रहीं और उनके आसपास टूटे हुए अनाज के दाने, टूटी-फूटी चाइना की क्राकरी, जले हुए पलंग और कुर्सियाँ, फटी हुई तस्वीरें निजी चीज़ों के छोटे-छोटे टुकड़े बिखरे रहे। उस मलबे को उन बेटों, पत्नियों और बच्चों का इंतज़ार था जो समय रहते बच निकलने में कामयाब हो गये थे।

घर के बाहर दो पुलिस वाले जाँच-पड़ताल जारी किये हुए थे। हमने उनसे जानने की कोशिश की कि तफ़्तीश शुरू करने में दस दिन कैसे लग गये, तो उनमें से एक पुलिस वाले को थोड़ा बुरा लग गया। उसका कहना था कि 'हमें तो पता ही अभी चला है।' लेकिन, जिस चौकी से वे आये थे, वह ताहिर हुसैन के घर से केवल पाँच मिनट के पैदल फ़ासले पर थी।

हुसैन के पड़ोसी अली रमजान की साइकिल की दूकान उसी चौराहे पर है जहाँ कटरा की पुलिस चौकी स्थित है। रमजान ने बताया, 'जब भीड़ ने मेरी दूकान बरबाद करनी शुरू की तो मैंने देखा कि पुलिस वाले लूट लो लूट लो कहकर उसे बढ़ावा दे रहे हैं। अब वही लोग चाहते हैं कि हम वहाँ एफ़आईआर दर्ज कराएँ।' रमजान कुल मिलाकर ज़्यादा शिकायत नहीं कर रहे थे। उनका छह साल का बेटा जुबैर अहमद किसी तरह बच गया था। अपने घर के पिछवाड़े से भगने की कोशिश करते हुए जुबैर को हमलावर कारसेवक घर की चीज़ों की जलती हुई होली में फेंकने ही वाले थे कि एक हिंदू पड़ोसी ने उसे यह कहकर बचा लिया कि वह उसका बेटा है।

इसी सड़क पर आगे जाकर अशर्फ़ी भवन के पार मुगलपुरा और बेगमपुरा के मुहल्ले हैं। यहाँ के कुछ मुसलमान घर कारसेवा के प्रकोप से बच गये थे। मुगलपुरा के मुहम्मद अमीन और अब्दुल हफ़ीज के अनुसार सात दिसम्बर को सुबह आठ बजे के आसपास कारसेवकों की एक पलटन उनके घरों को रौंदती हुई चली गयी। कुछ ही मिनट पहले बस्ती में तैनात पीएसी वाले वहाँ से गये थे। अमीन ने अपने घर के पीछे उगी लम्बी घास में छिपकर जान बचायी और अफ़ीज एक ताज़ा खुदी हुई क़ब्र में छिप गया। दो-तीन घंटे गुज़र जाने के बावजूद डर के मारे वे दोनों घर जाने की हिम्मत नहीं जुटा पा रहे थे, इसलिए अपने साथ भागे अन्य लोगों के साथ उन्होंने सोचा कि क्यों न कटरा पुलिस चौकी में शरण ली जाए। अमीन ने बताया कि चौकी वालों ने 'हमें अंदर नहीं घुसने दिया।' फिर वे पास के स्कूल में लगे पीएसी के शिविर तक दौड़ते हुए गये।

> वहाँ तो हालत और भी ख़राब थे। पुलिस ने हम पर क़ातिल होने का आरोप लगाया। उनका कहना था कि हमने ज़रूर किसी को चाकू मारा है और अब अपने अपराध को छिपाने के लिए हम कारसेवकों की कहानी बना रहे हैं। उन्होंने हमें जान से मार डालने की धमकी दी। अगर उनका कमांडिंग अफ़सर न आ जाता तो न जाने हमारा क्या होता।

उनके ज़मींदार की बीवी को छोड़कर कोई पड़ोसी उनकी मदद के लिए नहीं आया। बेगमपुरा में रहने वाले शीतल नामक युवक ने कहा, 'हममें से भी कई लोग डरे हुए थे। क्योंकि अगर हम लूट और आगजनी रोकने के लिए भीड़ से बहस करते तो वह हमारे ऊपर टूट पड़ने के लिए भी तैयार थी।' हालाँकि, इसके बावजूद शीतल ने निजी तौर पर अपनी बस्ती के कई लोगों की जान बचाई और बदले में उसे अपने हिंदू दोस्तों की तरफ़ से 'गद्दार' होने का लकब मिला।

अयोध्या में मुसलमान अन्य शहरों और क़स्बों की तरह घेटो बनाकर नहीं रहते। तक़रीबन हर मुहल्ले में हिंदुओं और मुसलमानों के घरों की दीवारें एक-दूसरे से लगी हुई हैं। आलमगंज कटरा और सोसाइटी जैसे कुछ ही बहुत छोटे-छोटे मुसलमान बहुल मोहल्ले हैं। ये बस्तियाँ उजड़ी हुई पड़ी थीं। उन्हें पूरी तरह बरबाद कर दिया गया था। ख़ासकर सोसाइटी के क़रीब बीस मुसलमान घर मलबे में बदल चुके थे और उसकी छोटी-सी मस्जिद की मीनारें घास पर बिखरी पड़ी थीं। घरों की बहुत-सी ईंटों पर 1924 की तारीख़ पड़ी हुई थी। भूखे आवारा कुत्ते भी हमारे साथ-साथ उस वीराने में मँडरा रहे थे। शायद हमारी वजह से उन्हें वहाँ ज़िंदगी की आहट सुनाई पड़ रही होगी।

विवादित स्थल के ठीक पीठ टेहड़ी बाज़ार मोहल्ला है। इसी से लगा हुआ ज़मीन का वह ख़ाली प्लाट है जिस पर बहुत से कारसेवकों ने अपने ख़ेमे गाड़ रखे थे। इसी मोहल्ले के शौक़त अली और उनके 13 साल के बेटे टोनी पर पहले हमला किया गया और फिर उन्हें उन्हीं के घर के आँगन में जला दिया गया। उनके ख़ून सने कपड़ों के टुकड़े उसी जगह पड़े हुए थे, जहाँ उन्हें जान से मारा गया था। इस बस्ती के मुसलमान भी उस समय तक नहीं लौटे थे। उनकी तीन हिंदू पड़ोसी महिलाओं ने हमें यह कहानी सुनायी।

टेहड़ी बाज़ार वह पहली बस्ती थी जिस पर सात दिसम्बर को सुबह चार बजे बंदूक़ों और तलवारें लिए हुए 'हज़ारों' की भीड़ ने हमला किया था। दस-बारह मुसलमान घरों को पहले लूटा गया और फिर उनमें आग लगा दी गयी। शौकत और उनके बेटे के अलावा सलीम और नादिर नामक दो भाई भी मार डाले गये। ये दोनों बाबरी मस्जिद के आख़िरी इमाम के तीन बेटों में से थे। तीसरे भाई को कारसेवकों ने पागल समझकर बख़्श दिया। एक औरत ने बताया कि 'उनमें से कुछ को हमने तीन दिनों तक अपने घरों में छुपा कर रखा। बाक़ी ने रामजन्मभूमि पुलिस थाने में शरण ली।'

टेहड़ी बाज़ार ही वह बस्ती थी जहाँ से अयोध्या की साम्प्रदायिक हिंसा शुरू हुई थी। अयोध्या के हिंदू बाबरी मस्जिद एक्शन कमेटी के स्थानीय सदर हाज़ी महबूब पर इलज़ाम लगाते हैं। महबूब का घर बस्ती के किनारे और उस मुख्य सड़क के ऊपर है जिसे कारसेवक अक्सर इस्तेमाल किया

जाँच आयोग के अध्यक्ष न्यायमूर्ति लिबरहन तत्कालीन प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह को बाबरी ध्वंस की रपट सौंपते हुए.

करते थे। हिंसा की शुरुआत के लिए महबूब को ज़िम्मेदार ठहराने वालों में कुछ स्थानीय पत्रकार और महंत शामिल थे। उनका कहना था कि महबूब ने छह दिसम्बर की शाम को कारसेवकों के एक जुलूस पर बंदूक़ से गोली चलाई। कुछ कहते हैं कि महबूब के घर से कारसेवकों पर एक बम फेंका गया था। नतीजतन एक व्यक्ति मारा गया। कुछ मरने वालों की संख्या पाँच बताते हैं। इससे कारसेवक गुस्से में आ गये और उन्होंने बदला लेने की क़सम खाई। आरोप लगाने वालों के अनुसार इसके बाद अयोध्या में जो कुछ हुआ वह महबूब की उसी हरकत का परिणाम था। लेकिन, इस बात से अयोध्या के दो प्रमुख विहिप समर्थक महंत रामचंद्र परमहंस और नृत्यागोपाल दास सहमत नहीं थे। उनका तो कहना यह था कि हालात का फ़ायदा उठाने के लिए अयोध्या के मुसलमानों ने अपने घर ख़ुद जला डाले ताकि सरकार से मुआवज़ा वसूला जा सके।

बहरहाल, हाजी महबूब वाली कहानी को मुसलमानों ने सही नहीं माना, पर उन्होंने उसकी सम्भावना से पूरी तरह इनकार भी नहीं किया। फ़ैज़ाबाद की शाही मस्जिद के प्रशासक नासिर हुसैन का कहना था :

> पता नहीं उन्होंने गोली चलाई या नहीं। लेकिन, अगर चलाई भी होगी तो अपनी हिफ़ाज़त में चलाई होगी। उस वक़्त जब लाखों कारसेवक आसपास घूम रहे हों, कोई बेवक़ूफ़ ही इस तरह की

हमलावर हरकत कर सकता है। और हाज़ी महबूब बेवकूफ़ नहीं हैं।

कुछ लोग रामजन्मभूमि पुलिस थाने के इंचार्ज शुक्ला द्वारा उस दिन किये गये अजीब-ओ-ग़रीब बरताव का हवाला देते हैं। शुक्ला महबूब को बेहद नापसंद करता था और यह बात कोई छिपी हुई नहीं थी। कुछ हफ़्ते पहले ही शुक्ला ने महबूब को गिरफ़्तार भी किया था। कई लोगों का मानना था कि आरोप फ़र्ज़ी थे। लेकिन, शुक्ला ने ही न केवल महबूब और उनके घरवालों को ख़तरा टल जाने तक हवालात में बंद करके जान बचाई, और बाद में उन्हें साफ़ चले जाने दिया। मुसलमानों का दावा था कि अगर महबूब द्वारा कारसेवकों पर गोली चलाने वाली कहानी में ज़रा भी दम होता तो शुक्ला ने उन्हें इस तरह न छोड़ दिया होता।

महबूब के बारे में बातचीत के दौरान टेहड़ी बाज़ार की एक हिंदू औरत ने मुँह ही मुँह में कहा, 'आख़िर उसे अपनी जान तो बचानी ही थी।'

■■■

कारसेवकों ने कुछ इस अंदाज़ में मुसलमानों के जान-माल पर हमला किया जैसे कि वे हाथ में वोटर-सूची लेकर उनके मकानों और दूकानों की शिनाख़्त कर रहे हों। इस नियोजित हमले ने अपने इतिहास में पहली बार पूरे नगर को धार्मिक आधार पर बाँट दिया। आठ साल तक प्रोपेगंडा भी जो न कर पाया था, वह इस दंगे ने कर दिखाया। पाठकों को याद होगा कि पहले दोनों समुदाय बाहर वालों को अयोध्या में हुई हिंसा का ज़िम्मेदार मानते हुए दावा करते थे कि वे मिल-जुलकर एक नहीं कई कारसेवाओं को झेल जाएँगे। इस बार ऐसी कोई बात सुनने में नहीं आयी। एक समुदाय के तौर पर और हिंदू-मुसलमानों के साझे मिथकों, किंवदंतियों, जीवन-शैलियों से सम्पन्न एक पवित्र और मान्यताप्राप्त नगरी के तौर पर अयोध्या की ताक़त भले ही पूरी तरह पराजित न हुई हो, पर उसमें आयी कमज़ोरी तो साफ़ देखी ही जा सकती थी। एक समुदाय के तौर पर अयोध्या कभी सुगठित नहीं थी, पर उसमें पूर्ण समुदाय के सभी लक्षण थे। वही अयोध्या अब दो अलग-अलग हो चुके समूहों के मन में बसे हुए प्रेतों से आक्रांत लग रही थी। दोनों समूह एक-दूसरे से डरे हुए, एक दूसरे के प्रति शक के शिकार और अपनी-अपनी हिफ़ाजत में लगे थे। हिंदू राष्ट्रवाद और उसकी पलटनों ने अपना काम कर दिया था।

हालाँकि हमें हर मोहल्ले में ऐसे हिंदू मिले जिन्होंने अपनी जान जोखिम में डालकर अपने मुसलमान पड़ोसियों को बचाया था; और एक को छोड़ कर हर मुसलमान ने इस बात की जमकर तारीफ़ भी की, पर बाहर वालों द्वारा किये जा रहे राजनीतिक तमाशे के प्रति स्थानीय वासियों में पहले जैसी मुँह बिचकाने वाली लापरवाही नहीं दिख रही थी। पहले वे कहते थे कि बाहर वालों द्वारा चलाए गये इस तमाशे ने कुछ स्थानीय लोगों को पैसे और सत्ता का स्वाद चखा दिया है। पहले अयोध्या के कई मुसलमान मंदिर आंदोलन को उपयोगितावादी नज़रिये से भी देखते थे, अब यह प्रवृत्ति भी गुज़रे ज़माने की बात हो चुकी थी। पादुका पूजन कार्यक्रम के लिए हज़ारों खड़ाऊँएँ मुसलमानों ने ही बनाई थीं, परमहंस को उनके एक मुसलमान दोस्त मुन्नू मियाँ ने क़ाबिल आदमी का ख़िताब दिया था, यहाँ तक कि कुछ मुसलमानों ने छह दिसम्बर की कारसेवा तक में हिस्सा ले लिया था। यह सब दोबारा होना नामुमकिन हो चुका था। जब एक स्थानीय मुसलमान कारसेवक दूसरे कारसेवकों के हाथों मारा गया, तो उसके पड़ोसियों ने उसकी नमाजे-जनाजा में शिरकत करने से इनकार कर दिया।

अयोध्या के मुसलमान 6-7 दिसम्बर की घटनाओं को एक लम्बे विभाजनकारी सिलसिले के अंग के रूप में देखते हैं। वे डरे हुए हैं, और गुस्से में भी हैं। उन्हें लगता है कि उन्हें स्थानीय हिंदुओं ने नीचा दिखाया है। उन्हें यक़ीन है कि कम से कम कुछ जगहों पर तो उनके हिंदू पड़ोसियों ने भी

उनके ऊपर किये गये अत्याचारों में सचेत रूप से हाथ ज़रूर बँटाया है। उनके दिलो-दिमाग़ पर छह दिसम्बर के बाद सारे देश में हुए दंगों में हुई एक हज़ार से ज़्यादा मौतों से भी अधिक यह एहसास तारी है कि उन्हें उनके पड़ोसियों ने ही दगा दिया। अब्दुल सत्तार बम्बई जाकर बसने का मन बना चुके थे। वहाँ उनका बेटा सिलाई का धंधा करता है। अब्दुल हफ़ीज़ को अयोध्या छोड़ने के लिए कर्फ़्यू हटने और अपने लोगों के वापस आने का इंतज़ार था।

दूसरी तरफ़, आठ से दस साल के बीच के कुछ बच्चे इस बात पर अड़े हुए थे कि वे अयोध्या छोड़कर नहीं जाएँगे। उनमें से एक ने पास के बाग़ में छिपकर अपने मोहल्ले का विनाश आँखों से देखा था। उसने कहा, 'हम बंदूक़ चलाना और फिलिस्तीनियों की तरह लड़ना सीखेंगे।' जब हमने पूछा कि उसे फिलिस्तीनियों के बारे में क्या पता है, तो उसने बताया कि 'ताक़तवर लोग सालों से फिलिस्तीनियों का नामो-निशान मिटाने में जुटे हैं, लेकिन कामयाब नहीं हो पा रहे। क्योंकि फिलिस्तीनी बहादुरी से बंदूक़ों के ज़रिये उनका सामना कर रहे हैं। हम भी ऐसा ही करेंगे।' दूसरे बच्चे इस बात से सहमत थे।

सहनवा

फ़ैज़ाबाद से कुछ मील दूर सुल्तानपुर जाने वाली सड़क पर सहनवा नाम का एक गाँव है। उसकी आबादी में हिंदू और मुसलमान लगभग बराबर-बराबर हैं। ज़्यादातर की रोज़ी खेती या उससे जुड़े धंधों पर टिकी है। पूर्वी उत्तर प्रदेश के अनगिनत शांत गाँवों से सहनवा किसी भी तरह अलग नहीं है। 1990 में कारसेवकों द्वारा बाबरी मस्जिद पर किये गये पहले हमले के वक़्त एक वृत्तचित्र बनाने वाले दल के साथ यात्रा करते हुए हमारा एक साथी अनायास ही सहनवा पहुँच गया था। मक़सद था अयोध्या के नज़दीक ग्रामीण फ़ैज़ाबाद के कुछ मुसलमानों के मानस में झाँकना। इस गाँव के लोगों को हमारे साथी ने भले ही भुला दिया हो, पर हमें बाद में पता चला कि गाँव वालों ने उसे नहीं भुलाया है।

पाठकों को यह भी याद होगा कि बातचीत के दौरान नृत्यगोपाल दास ने सहनवा गाँव का ज़िक्र किया था। उनके अनुसार स्थानीय शियाओं की तरफ़ से विवाद के हल के रूप में बाबरी मस्जिद को इसी गाँव में स्थानांतरित करने का प्रस्ताव आया था। नृत्यगोपाल दास के मुताबिक़ 1528 में जिस मीर बाक़ी ने यह मस्जिद बनवाई थी, उसे यहीं दफ़नाया गया था और उसके वंशज आज भी इसी गाँव में रहते हैं। रामचंद्र परमहंस ने भी तक़रीबन यही बात कही थी।

अयोध्या के अपने दौरे के आख़िर में अचानक हमें खयाल आया कि हमें सहनवा गाँव भी जाना चाहिए— अगर और कुछ नहीं तो केवल यह देखने के लिए कि मीर बाक़ी के वंशजों ने अयोध्या की दुखांत घटनाओं पर क्या प्रतिक्रिया की होगी। आख़िर वे उसी मीर बाक़ी के वंशज हैं जिसकी फ़ौज़ों ने मध्ययुग में कई जीतें हासिल की होंगी, और जिस मीर बाक़ी को सबसे बड़े हिंदू-विरोधी के रूप में पेश किया जा रहा है। हमें लगा कि शायद सहनवा की यात्रा से हमें हमारी कहानी का उपयुक्त उपसंहार मिल जाए।

सूरज डूबने के बाद हम उस गाँव में पहुँचे और एक गाँव वाले से मीर बाक़ी के वंशजों के घर ले जाने के लिए कहा। वह गाँववाला मुसलमान था, और हमें पिछले दौरे के कारण जानता भी था। वह फटाफट हमारी कार में बैठकर गाँव के बाहरी इलाक़े में बने एक घर की तरफ़ ले गया। वहाँ पहुँच कर वह भीतर चला गया और जल्दी ही एक चारपाई लाई गयी जिस पर हम लोग बैठ गये। कुछ मिनटों के बाद एक लम्बा, गोरा, नीली आँखों वाला पकी उम्र का व्यक्ति बाहर आया। उसने स्थानीय बोली में हमारा अभिवादन किया। देखने से ही लग रहा था कि वह शख़्स एक कुलीन परिवार में जन्मा एक प्रतिष्ठित किसान है। ज़ाहिर था कि वही व्यक्ति घर का मालिक था और उसी के साथ हमारा परिचय कराया जाने वाला था।

हमने अभी उस व्यक्ति से पूछा ही था क्या अयोध्या में सहनवा और मीर बाक़ी के वंशजों के बारे में कही जा रही बातें सही हैं कि उसके जवाब देने से पहले वहाँ काफ़ी लोग जमा हो गये। उनमें से कई खेतों से और कई पास की एक मस्जिद से लौट रहे थे। इन्हीं लोगों के बीच से एक-दो बुज़ुर्गों ने ज़ोर की आवाज़ में कहा कि मीर बाक़ी के वंशजों वाली बात बकवास है। 'हमारा मीर बाक़ी से कोई वास्ता नहीं है। वह न कभी यहाँ आया, और यहाँ उसका इंतकाल तो हुआ ही नहीं। अगर उसकी मौत यहाँ हुई होती तो क्या इतने अहम आदमी का कोई मक़बरा या क़ब्र तो यहाँ होती।' एक बुज़ुर्ग ने सख़्ती से कहा, 'अब आप लोग यहाँ से जाकर यही सब बातें लिखेंगे और हमारे गाँव पर हमला हो जाएगा। हमें आप अकेला छोड़ दीजिए।' इस बात से बाक़ी लोग भी सहमत थे। उन्होंने हमसे आग्रह किया कि हम लोग झूठी बातों पर यक़ीन न करें। ये तो विहिप के स्थानीय कारकुनों की उड़ाई हुई बातें हैं ताकि कारसेवक सहनवा पर कहर बनकर टूट पड़ें और हमारा पूरा गाँव तबाह हो जाए। उन्होंने बताया कि गाँव में 24 घंटे पहरा देने वाले दल गठित किये गये हैं और गाँव का पूरा मुसलमान समुदाय लगातार दहशत में रहता है। उसे डर है कि बाहर वाले कभी भी हमला कर सकते हैं। उन्होंने बाबरी मस्जिद के आख़िरी इमाम के दो पौत्रों से भी हमें मिलवाया जिनके पिताओं को अयोध्या में सात दिसम्बर का दंगा निगल गया था। दोनों बालक सदमे में लग रहे थे। रोते-रोते उनकी आँखें लाल होकर सूज गयी थीं।

हम थोड़ी देर तक उन लोगों के साथ रहे। हमारे एक साथी ने गाँववालों से वायदा किया कि वह उस वृत्तचित्र का एक वीडियो कैसेट भेजेगा जिसकी आंशिक शूटिंग उसी गाँव में हुई थी। लेकिन, उस समय तक साफ़ हो चुका था कि मीर बाक़ी के वंशजों को तलाश कर अयोध्या की घटनाओं पर उनकी प्रतिक्रिया लेने की कोशिश करना बेकार है। जब हम जाने के लिए उठ ही रहे थे कि बातचीत में कुशल एक स्थानीय दूकानदार हमें किनारे ले गया। उसने बताया कि हिंदी पत्रिका *माया* गाँववालों से बात करके सहनवा और मीर बाक़ी के रिश्तों पर एक स्टोरी छाप चुकी है। गाँववालों को उस समय लगा था कि शायद एक लोकप्रिय पत्रिका में उनकी बातें छप जाएँगी तो उन्हें भी कुछ मशहूरी मिल जाएगी। दूकानदार के मुताबिक़ 'उन्हीं झूठी बातों के कारण अब ये लोग परेशानी झेल रहे हैं।' ज़ाहिर है कि मीर बाक़ी के दृष्टांत का पीछा करते-करते सहनवा आने वाले केवल हम लोग ही नहीं थे। गाँववालों ने बताया कि कई भारतीय और विदेशी पत्रकार, टेलीविज़न प्रोड्यूसर और यहाँ तक कि अमेरिकी विश्वविद्यालय का प्रोफ़ेसर इसी मक़सद से यहाँ आ चुका था। 'उनसे भी हमने यही सब बातें कही थीं।'

अँधेरा होने लगा था। गाँव से चलते समय एक एहसास अचानक हम पर तारी हो गया कि मीर बाक़ी चाहे जो भी रहा हो, उसके वंशजों का मध्ययुग के फ़ौज़ी सरदारों की किसी सामंतशाही से कोई ताल्लुक़ नहीं रह गया था। पूर्वी उत्तर प्रदेश के एक मामूली से गाँव में एक आक्रांत समुदाय के डरों और बेचैनियों की छाया के तले वे भी अवध के किसानों की साधारण दुनिया के अंग थे।